RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : KANPUR HO/002/2025-27
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

द्रविड़ भारत

गौतम बुद्ध

बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

जून-2025 | वर्ष - 17 | अंक : 05 | मूल्य : 5/-

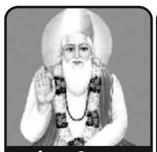

संत कबीर दास

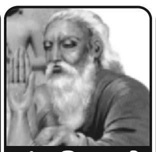

संत रविदास जी

घासीदास

बिरसामुण्डा

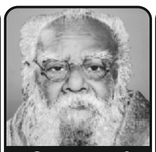

पेरियार रामास्वामी

छत्रपति शाहूजी महाराज

सन्त गाडगे

महात्मा ज्योतिबा राव फुले

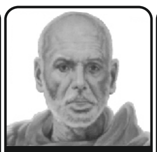

नारायण गुरु

सावित्री बाई फुले

कांशीराम

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (सहा.अभि. जलकल विभाग), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश :
सुनील कुमार, ढेलवा, गाजीपुर (उ.प्र.), मो.: 9935363730, 9170836363
योगेन्द्र कुमार (ब्यूरो चीफ चित्रकूट मण्डल) मो.: 8299162841
हमीरपुर ब्यूरो प्रमुख -
रघुवर प्रसाद, मो.: 9793739030
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :
40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख लखनऊ मण्डल :
राजकुमार, उन्नाव
मो.: 9889273743, 9392660070
हरियाणा राज्य :
डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-बहादुरगढ़,जिला-झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार
कार्यालय : ग्रा. व पो.-रामटौरिया, जिला-छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य : ब्यूरो प्रमुख
रमा गजभिये, मो.: 7828273934
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई दिल्ली-44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला-अलवर-301001, मो. : 09887512360, 0144-3201516
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :
ग्रा व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला-महोबा (उ.प्र.)
मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी
उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें -
भारतीय स्टेट बैंक
पी.पी.एन. मार्केट, कानपुर
खाता सं.-33496621020
IFSC CODE-SBIN0001784

दलितों की हार को जीत में बदला कांशीराम ने

कांशीराम का ऐतिहासिक थप्पड़ खाए मुझे ज्यादा वक्त नहीं बीता था कि एक दिन सुधीर गोयल एस. पी. सिंह के पास आए। बोले कांशीराम लुधियाना में एक रैली कर रहे हैं। आप किसी को भेजिए। एस. पी. ने कहा कांशीराम के साथ वही लड़का जाएगा, जिसे उन्होंने थप्पड़ मारा। गोयल ने कहा, ''मैं पूछ कर बताता हूं।' एस. पी. ने अगले दिन मुझे बुलाया। बोले कांशीराम के साथ उनके हवाई जहाज में पंजाब जाना है। मैंने कहा 'ठीक है'। पूछा 'तुम्हें कोई दिक्कत तो नहीं।' मैंने जवाब दिया। 'नहीं'। अगले दिन एयरपोर्ट पर कांशीराम से सामना हुआ। बात नहीं। लुधियाना होटल पहुंचे। प्रेस कांफ्रेंस खत्म हुई। थोड़ी देर बाद वे उसी हाल में मेरे पास आए और गले लगाते हुए कहा, 'कुछ पर्सनल नहीं था'। बस इतना ही और कुछ नहीं। मैंने भी कुछ नहीं कहा। रैली हुई। भारी भीड़ जमा हो गई। शाम को वापस लौटना था। हमें होटल ले जाया गया। कांशीराम भी अपनी गाड़ी में सवार एयरपोर्ट चल पड़े। हमारा प्लेन चलने के ठीक पहले वे आए। मुझे लगा शायद कोई काम होगा। लेकिन तभी प्लेन के दरवाजे बंद हो गए और चलने को तैयार। कांशीराम बाहर से हाथ हिलाते वापस अपनी कार में बैठ अगले पड़ाव को निकल पड़े। अब मेरी समझ में आया वे 'हमें छोड़ने आए थे।' वे अक्सर ऐसा करते नहीं थे। लेकिन उस दिन उन्होंने ऐसा किया।

उसके बाद अखबारों में खबर छपी और मीडिया में फुसफुसाहट कि कांशीराम ने पैसे देकर आशुतोष को खरीद लिया। वह बिक गया, पिटने के बाद भी। उनका एयरपोर्ट पर हाथ हिलाना और गले लगाते समय सुना वाक्य 'कुछ पर्सनल नहीं था' हमेशा कानों में गूंजते रहे। मैं भी सोचता रहा, जो व्यक्ति दलित राजनीति करता हो, जिसके बारे में मशहूर हो कि वह उच्च जाति के लोगों से नफरत करता है, वह ऐसा कैसे हो सकता है।

शायद यही उनकी राजनीति की नींव थी। और खासियत भी। कांशीराम को जितना मैंने देखा और मिला मुझे उनमें व्यक्ति विशेष को लेकर कटुता नहीं दिखी। उनका आक्रोश उस हिन्दू जाति व्यवस्था को लेकर था, जो दलितों को इंसान नहीं, पशु समझती है। जो दलितों को वेद मंत्र सुनने की इजाजत नहीं देती, जो बाबू साहब लोगों के सामने दलितों को बैठने की हिम्मत नहीं देती। कांशीराम चाहते थे कि इस व्यवस्था में अंदर से बदलाव हो। दलित इंसान बने और 'बाबू साहब' लोगों पर शासन करें। वे अक्सर अपनी रैलियों में कहते भी थे कि तुम सब 'नालायक' हो। तुम्हें रिजर्वेशन चाहिए। मैं तुम्हारी नालायकी दूर करूंगा। तुम्हें लायक बनाऊंगा। उनका कहना साफ था, दलित अगर 'नालायक' रहा तो 'मनुवादी व्यवस्था' काबिज रहेगी और सवर्णों का शासन चलता रहेगा। और दलित अगर लायक बन गया, तो सवर्णों का बंटाधार। दलितों को लायक बनाने के लिए उसे सत्ता के गलियारों में लाने के लिए वे कुछ भी करने को तैयार थे। किसी से भी हाथ मिला सकते थे। भले ही लोग उन्हें अवसरवादी कहें। उन्होंने सबसे पहले सेक्युलर मुलायम से गठबंधन किया और दलितों को पहली बार एहसास कराया कि सत्ता क्या होती है। साथ ही सदियों पुरानी गुलामी के एहसास को भी खत्म कर दिया। मुलायम के साथ वे भागीदार जरूर थे, लेकिन उनका अंदाज हमेशा मुलायम को घुड़कने वाला ही था। वे पब्लिक प्लेटफार्म से भी मुलायम को गाली देने से चूकते नहीं थे। हमें लगता था, वे सत्ता की भाषा नहीं समझते। उनकी हरकत से सरकार गिर भी सकती है। लेकिन वे जानते थे मुलायम को सत्ता सिर्फ अपने आप को बनाए रखने के लिए चाहिए, लेकिन कांशीराम को दलितों के अंदर में यह एहसास जगाने के लिए कि 'हिन्दू इतिहास' में पहली बार सत्ता बनेगी और बिगड़ेगी दलितों की वजह से। इससे बड़ा एहसास नहीं हो सकता। अगर आप को मालूम हो कि राजा आपके इशारे पर कुर्सी पर है और इशारा हटते ही जमीन पर दो कौड़ी का। मुलायम की सरकार ने कांशीराम का मकसद पूरा कर दिया और कांशीराम ने अपनी ऐतिहासिक भूमिका अदा कर दी। इसके बाद कभी भी ऐसा नहीं हुआ कि उत्तर प्रदेश में दलितों की अनदेखी कर सरकार बनी हो और सत्ता के एहसास का बनाए रखने के लिए ही कांशीराम सेक्युलर राजनीति के गड़बड़झाले में नहीं पड़े। बीजेपी, आरएसएस को धुर मनुवादी मानने के बाद भी उनकी मदद से बार-बार मायावती को उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री बनवाया। जरूरत पड़ी तो कांग्रेस से भी हाथ मिला लिया। लोग अवसरवादी कहें उनकी बला से।

शायद यही खेल कांशीराम के आदर्श बी. आर. अम्बेडकर नहीं समझ पाए। अम्बेडकर आजीवन गांधीजी से लड़ते रहे। दलितों को अधिकार दिलाने के नाम पर कभी 'सेपरेट एलेक्टोरेट' की बात करते रहे, तो गांधीजी के आमरण अनशन के बाद दलितों के लिए आरक्षण पर सहमत हो गए। अम्बेडकर ने भले ही दलित तबके में सामाजिक चेतना का वह ज्वार पैदा किया, जिस पर आगे चलकर कांशीराम ने जहां हिन्दू व्यवस्था में ही हल खोजा, वहीं अम्बेडकर ने हिन्दू व्यवस्था के सामने हार मान ली और बौद्ध हो गए। हालांकि बौद्ध होने की बात कांशीराम भी करते थे, लेकिन शायद अपने समर्थकों को लामबंद करने के लिए, उसको अमलीजामा पहनाने के लिए नहीं।

लुई फिशर लिखता है 'अम्बेडकर को हिन्दू राज की जगह ब्रिटिश राज पसंद था, हिन्दू धर्म की जगह इस्लाम। सदियों पुराने हिन्दू अन्याय ने उनमें इतनी कटुता भर दी थी कि अगर 1932 में गांधी के आमरण अनशन पर बैठने के बाद कोई एक शख्स उनकी मौत की कामना कर सकता था, तो वे थे अम्बेडकर। तब अम्बेडकर ने गांधीजी के अनशन को राजनीतिक स्टंट करार दिया था। गांधीजी का यह अनशन अंग्रेजों के दलितों को 'सेपरेट एलेक्टोरेट' देने के प्रस्ताव के खिलाफ था। गांधीजी का मानना था कि ये प्रस्ताव हिन्दू समाज को छिन्न-भिन्न कर देगा, वहीं अम्बेडकर को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था। अम्बेडकर दार्शनिक थे और कांशीराम समाज सुधारक के साथ-साथ राजनीतिज्ञ। अम्बेडकर ने चेतना का प्रसार किया, दलितों में एक समझ और चिंतन का संचार किया, बराबरी और समानता का पाठ पढ़ाया, लेकिन कांशीराम ने कहा सिर्फ सोचने से काम नहीं चलेगा, अधिकार लेना है तो 'सत्ता छीननी पड़ेगी' बाबू साहब का दंभ तोड़ना पड़ेगा, उनको गाली देनी होगी, तभी तो नारा बुलंद हुआ 'तिलक, तराजू और तलवार, मारो उनको जूते चार'। अम्बेडकर राजनीति में आते ही फेल हो गए। आजाद भारत में जब उनकी राजनीति ज्यादा चमक सकती थी, तब 1956 में लाखों दलितों को लेकर बौद्ध हो गए और उनकी बनाई रिपब्लिकन पार्टी बिना कोई असर डाले बिखर गई। और यही अम्बेडकर हार गए और कांशीराम जी गए।

साभार :
बहुजन नायक
मान्यवर कांशीराम स्मृति ग्रंथ
पेज संख्या 102 से 103 तक
एस. एस. गौतम

पाकिस्तान का मुस्लिम विकल्प

हिंदू कहते हैं कि उनके पास पाकिस्तान का विकल्प है। क्या मुस्लिमों के पास भी पाकिस्तान का विकल्प है? हिंदू कहते है ''हां'' मुस्लिम कहते है नहीं। हिंदुओं का विश्वास है कि पाकिस्तान के लिए मुस्लिमों का प्रस्ताव सिर्फ सौदेबाजी के लिए है, ताकि कम्यूनल एवार्ड के तहत प्राप्त सांप्रदायिक सुविधाओं के अतिरिक्त उन्हें और भी सांप्रदायिक सुविधाएं प्राप्त हो सकें। मुस्लिम इस बात से इंकार करते हैं। उनका कहना है कि पाकिस्तान के बराबर कोई अन्य चीज नहीं है, इसलिए उन्हें पाकिस्तान चाहिए और केवल पाकिस्तान ही चाहिए। ऐसा लगता भी है कि मुसलमान पाकिस्तान के प्रति बहुत अधिक समर्पित है, और उनका दृढ़ संकल्प है कि उन्हें कुछ नहीं चाहिए और हिंदुओं की विकल्प की आशा कोरा काल्पनिक विचार है। परंतु यदि मान भी लिया जाए कि हिंदू पाकिस्तान के मुस्लिम विकल्प को स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाएंगे? इस प्रश्न का उत्तर निश्चित रूप से इस बात पर निर्भर करेगा कि मुस्लिम विकल्प क्या है।

पाकिस्तान का मुस्लिम विकल्प क्या है, यह कोई भी नहीं जानता। यदि मुस्लिमों के पास कोई विकल्प है भी तो उन्होंने उसे जाहिर नहीं किया है और शायद वे उस दिन तक उसे जाहिर करेंगे भी नहीं, जब तक कि विरोधी संप्रदाय आपस में मिलकर उन शर्तों को संशोधित और तय न कर लें जिनके आधार पर भविष्य में हिंदू और मुस्लिम मिलकर रहेंगे। पहले से चेतावनी मिल जाना पहले से सशस्त्र हो जाने जैसा होता है। अतएव हिंदुओं के लिए यह आवश्यक है कि मुस्लिम विकल्प के बारे में कुछ न कुछ जानकारी प्राप्त कर लें, ताकि वे आकस्मिक आघात का सामना कर सकें। यह इसलिए भी आवश्यक है कि ऐसा विकल्प कम्यूनल एवार्ड से बेहतर नहीं हो सकता, बल्कि कई दर्जे ज्यादा खराब ही होगा।

किसी ठोस वैकल्पिक प्रस्ताव के अभाव में, केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है, अतः एक व्यक्ति का अनुमान उतना ही अच्छा हो सकता है, जितना दूसरे का और इसलिए संबंद्ध पक्ष को यह चुनाव करना पड़ेगा कि वह किस पर विश्वास करे। इस बारे में संभावित अनुमानों में से मेरा अनुमान यह है कि मुस्लिम अपने विकल्प के रूप में निम्नलिखित प्रस्ताव रख सकते हैं :

हिंदुस्तान का भावी संविधान यह प्रावधान करेगा

1. केंद्रीय और प्रांतीय दोनों विधान मंडलों में पृथक निर्वाचक प्रणाली के आधार पर मुस्लिमों का 50 प्रतिशत प्रतिनिधित्व होगा।
2. केंद्रीय और प्रांतीय कार्यपालिका में मुस्लिम प्रतिनिधित्व 50 प्रतिशत होगा।
3. सरकारी सिविल सेवाओं में 50 प्रतिशत पद मुस्लिमों के लिए निर्धारित किए जाएंगे।
4. सशस्त्र सेनाओं में सैनिकों और उच्च पदों में मुस्लिमों का अनुपात आधा–आधा होगा।
5. सभी सार्वजनिक निकायों, जैसे परिषदों और आयोगों, में सार्वजनिक कार्यों के उद्देश्यों के लिए मुसलमानों का प्रतिनिधित्व 50 प्रतिशत होगा।
6. उन सभी अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में, जिनमें भारत भाग लेगा, मुस्लिमों को 50 प्रतिशत प्रतिनिधित्व दिया जाएगा।
7. यदि प्रधान मंत्री हिंदू होगा, तो उप–प्रधान मंत्री मुस्लिम होगा।
8. यदि सेनाध्यक्ष (कमांडर इन चीफ) हिंदू होगा, तो उप–सेनाध्यक्ष (डिप्टी कमांडर इन चीफ) मुस्लिम होगा।
9. विधान–मंडल के 66 प्रतिशत मुस्लिम सदस्यों की सहमति के बिना प्रांतीय सीमाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा।
10. विधान–मंडल के 66 प्रतिशत मुस्लिम सदस्यों की सहमति के बिना किसी मुस्लिम देश के विरूद्ध कोई कार्रवाई या संधि वैध नहीं होगी।
11. विधान–मंडल के 66 प्रतिशत मुस्लिम सदस्यों की सहमति के बिना मुस्लिमों की संस्कृति या धर्म से संबंधित कोई धार्मिक रीति–रिवाजों को प्रभावित करने वाला कानून नहीं बनाया जाएगा।
12. हिंदुस्तान की राष्ट्रीय भाषा उर्दू होगी।
13. गोवध पर प्रतिबंध लगाने वाला कोई कानून वैध नहीं होगा और न ही इस्लाम के प्रचार तथा इस्लाम धर्म में परिवर्तन करने वाला कोई कानून वैध होगा यदि इसे विधान–मंडल के 66 प्रतिशत मुस्लिम सदस्यों की सहमति से पारित न किया गया हो।
14. संविधान ने परिवर्तन या संशोधन के लिए आवश्यक बहुमत के बिना, जिसमें विधानमंडल के 66 प्रतिशत मुस्लिम सदस्यों का बहुमत भी है, संविधान में ऐसा परिवर्तन या संशोधन वैध नहीं माना जाएगा।

मेरा यह अनुमान कोरी कल्पना पर आधारित नहीं है और न ही अनिच्छापूर्वक या जल्दबाजी में पाकिस्तान स्वीकार कराने के लिए हिंदुओं को भयभीत करने के लिए है। यदि मैं कहूं तो यह मुस्लिम स्त्रोत से प्राप्त जानकारी के आधार पर सोच–समझकर लगाया गया अनुमान है।

मुस्लिम विकल्प किस तरह का होने की संभावना है, इसका पता हैदराबाद के महामहिम निजाम के अपने राज्य के अंतर्गत तैयार किए जाने वाले संवैधानिक सुधारों की प्रकृति से चलता है।

हैदराबाद सुधार योजना एक अनूठी योजना है। इसमें ब्रिटिश हिंदुस्तान की सांप्रदायिक प्रतिनिधि वाली योजना को नहीं माना गया है। इसके स्थान पर इसमें क्रियात्मक (फंक्शनल) प्रतिनिधित्व प्रतिस्थापित किया गया है, अर्थात वर्गों और व्यवसाय के अनुसार प्रतिनिधित्व। इस विधान मंडल में 70 सदस्य होंगे और इसका गठन इस प्रकार होगा :

निर्वाचित			मनोनीत		
कृषि		12	इलाके		8
पाटीदार	8		सर्फ–ए–खास	2	
काश्तकार	4		पैगाह	3	
महिलाएं	1		पेशकारी	1	
ग्रेजुएट (स्नातक)	1		सालारजंग	1	
विश्वविद्यालय	1		समस्थान	1	
जागीरदार	2		अधिकारी वर्ग		18
माशदार	1		ग्रामीण कलाएं और		
कानूनी	2		दस्तकारियां		1
चिकित्सीय	2		पिछड़े वर्ग		1
पश्चिमी	1		प्रतिनिधित्वहीन छोटे वर्ग		3
स्वदेशी	1		अन्य		6
शिक्षक		1			
व्यापार		1			
उद्योग		2			
बैंकिंग		2			
स्वदेशी	1				
सहकारी व ज्वांयट स्टाक	1				
संगठित श्रमिक		1			
हरिजन		1			
जिला पालिकाएं		1			
नगर पालिकाएं		1			
ग्रामीण बोर्ड		1			
योग		33	योग		37

क्रियात्मक (फंकशनल) प्रतिनिधित्व की इस योजना से विभिन्न वर्गों और खंडी में सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व की तुलना में अधिक भाईचारा पैदा हो जाएगा यह बहुत संदेहास्पद है। विद्यमान धार्मिक और सामाजिक विभाजन के अतिरिक्त वर्ग–जागरूकता पैदा हो जाने से वर्ग–संघर्ष बड़ी आसानी से बढ़ जाएंगे। यह योजना बड़ी अहानिकर लगती है, परंतु इसकी वास्तविक प्रकृति का तो तब पता चलेगा जब हर वर्ग अपनी संख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व की मांग करेगा। जो भी हो, क्रियात्मक प्रतिनिधित्व हैदराबाद के सुधारों की योजना का सबसे उल्लेखनीय पहलू नहीं है। यह योजना की सबसे उल्लेखनीय विशिष्टता है नए हैदराबाद विधानमंडल में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच स्थानों का प्रस्तावित बंटवारा। महामहिम निजाम द्वारा अनुमोदित इस योजना में सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व को पूरी तरह समाप्त नहीं किया गया है। इसे क्रियात्मक प्रतिनिधित्व के साथ–साथ बनाए रखा गया है। यह योजना संयुक्त निर्वाचक–मंडलों के जरिए लागू होगी परंतु विधान मंडल सहित प्रत्येक निर्वाचित निकाय में दोनों मुख्य संप्रदायों का समान प्रतिनिधित्व होगा और किसी उम्मीदवार को तब तक नहीं चुना जाएगा जब तक कि डाले गए कुल मतों में से उसे अपने संप्रदाय के 40 प्रतिशत मत नहीं मिलते। उनकी संख्या का विचार किए बिना हिंदुओं और मुस्लिमों के समान प्रतिनिधित्व का सिद्धांत न केवल हर निर्वाचित निकाय पर लागू होगा, बल्कि उस निकाय के निर्वाचित और मनोनीत सदस्यों पर भी लागू होगा।

समान प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को न्यायोचित ठहराते हुए यह कहा गया है कि :

''मुस्लिम संप्रदाय की ऐतिहासिक स्थिति के कारण और रियासत में उसके महत्व के कारण राज्य में मुस्लिम संप्रदाय को अल्पमत का दर्जा नहीं दिया जा सकता।

हाल ही में एक श्री अमीर अकबर अली खां ने, जो अपने आप को नेशनलिस्ट पार्टी का लीडर कहता है, ब्रिटिश हिंदुस्तान में हिंदू–मुस्लिम समस्या के समाधान के लिए समाचार पत्रों में निम्नलिखित सुझाव दिए हैं :

1. हिंदुस्तान का भावी संविधान देश की पर्याप्त सैनिक सुरक्षा के व्यापक आधार पर तैयार होना चाहिए और इसे लोगों को सैनिक प्रवृत्ति वाला बनाना चाहिए। हिंदुओं को भी मुस्लिमों की तरह सैनिक प्रवृत्ति वाला होना चाहिए।
2. वर्तमान परिस्थितियां दोनों संप्रदायों को यह मांग करने का उत्कृष्ट अवसर देती है कि हिंदुस्तानी फौज में हिंदू और मुस्लिम बराबर संख्या में होने चाहिए और कोई भी रेजिमेंट सांप्रदायिक आधार पर न बनाई जाकर क्षेत्रीय आधार पर बनाई जानी चाहिए।
3. प्रांतों और केंद्र की सरकारें पूरी तरह राष्ट्रीय सरकारें होनी चाहिए और उनमें सैनिक मनोवृत्ति के व्यक्तित्व होने चाहिए। केंद्रीय और सभी प्रांतीय मंत्रिमंडलों में हिंदू और मुस्लिम बराबर संख्या में होने चाहिए। जहां आवश्यक हो, महत्वपूर्ण अल्पसंख्यकों को विशेष प्रतिनिधित्व दिया जाए। संयुक्त निर्वाचक–मंडल के माध्यम से यह योजना बहुत संतोषजनक ढंग से काम करेगी। परंतु देश की वर्तमान परिस्थिति में पृथक निर्वाचक–मंडल जारी रहने चाहिए। हिंदू मंत्री विधान कें हिंदू सदस्यों द्वारा चुने जाने चाहिए और मुस्लिम मंत्री मुस्लिम सदस्यों द्वारा।
4. मंत्रिमंडल तभी बर्खास्त किया जा सकता है जब पूरे मंत्रिमंडल के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाया जाए और वह समूचे सदन के दो–तिहाई बहुमत से पारित हो। इसमें हिंदुओं और मुस्लिमों का अलग–अलग बहुमत हो।

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

5. प्रत्येक संप्रदाय के धर्म, भाषा, लिपि और व्यक्तिगत कानून की सर्वोच्च संवैधानिक नियंत्रण द्वारा सुरक्षा की जानी चाहिए, जिससे प्रत्येक सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्यों के बहुमत को यह अधिकार हासिल हो कि वे किसी भी ऐसा कानून या अन्य कदम को वीटो कर सकें जो उपरोक्त स्थिति पर प्रभाव डालता हो। इसी तरह संप्रदाय के अधिक कल्याण–कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले किसी भी कदम या उपाय पर ऐसा ही वीटो करने की व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

6. प्रशासन में समुचित प्रतिनिधित्व देने के लिए नौकरियों में सांप्रदायिक अनुपात को एक व्यावहारिक उपाय के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए और संरक्षण देते समय भी इसका ध्यान रखा जाना चाहिए।

यदि हैदराबाद रियासत की नेशनल पार्टी का एक मुस्लिम नेता ऐसा प्रस्ताव देता है, तो इससे यह संकेत मिलता है कि ब्रिटिश हिंदुस्तान में रहने वाले मुसलमानों का दिमाग किस दिशा में चल रहा है। इसलिए मैंने पाकिस्तान के विकल्प के बारे में जो अनुमान लगाया है, उसे और अधिक समर्थन मिल जाता है।

II

यह सच है कि आजाद मुस्लिम सम्मेलन के भारी–भरकम नाम से अप्रैल 1940 में दिल्ली में एक मुस्लिम सम्मेलन बड़ी धूमधाम से हुआ था। इस आजाद सम्मेलन में जो मुस्लिम शामिल हुए थे, वे मुस्लिम लीग और नेशनलिस्ट मुसलमानों दोनों के विरोधी थे। वे मुस्लिम लीग के विरोधी थे, क्योंकि एक तो वे पाकिस्तान का विरोध करते थे और दूसरे अपने अधिकारों के समर्थन के लिए वे अंग्रेजों पर निर्भर नहीं रहना चाहते थे।

वे नेशनलिस्ट मुसलमानों अर्थात् पूरी तरह कांग्रेस समर्थकों के भी विरूद्ध थे, क्योंकि कांग्रेस पर उन्होंने मुसलमानों की संस्कृति और धार्मिक अधिकार के प्रति उदासीन होने का आरोप लगाया था।

इन सबके होते हुए भी हिंदुओं ने इस आजाद मुस्लिम सम्मेलन को मित्रों का सम्मेलन बताते हुए इसका स्वागत किया। परंतु सम्मेलन में जो प्रस्ताव पास किए गए, उनसे मुस्लिम लीग और आजाद मुस्लिम सम्मेलन के बीच कोई अंतर नजर नहीं आता। आजाद मुस्लिम सम्मेलन में जो प्रस्ताव पास किए गए, उनमें से तीन प्रस्तावों से इस समस्या के बारे में उनका दृष्टिकोण पता चलता है।

'यह सम्मेलन जो ऐसे हिंदुस्तानी मुस्लिमों का प्रतिनिधि सम्मेलन है जो देश के लिए पूरी आजादी पाना चाहते हैं और जिसमें हर प्रांत से प्रतिनिधि और डेलीगेट आए हैं, मुस्लिम समुदाय के हितों और समूचे देश के हितों से संबंद्ध सभी प्रश्नों पर पूरी तरह और सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद निम्नलिखित घोषणा करता हैः

''हिंदुस्तान की भौगोलिक और राजनीतिक सीमाएं पूर्णतः एक होंगी और इस प्रकार यह सभी नागरिकों का साझा वतन है, भले ही उनकी जाति या धर्म कोई भी क्यों न हो और वे इसके सभी संसाधनों के साझे मालिक हैं। देश का कोना–कोना मुस्लिमों का घर है व वतन है जो अपने मजहब और संस्कृति की ऐतिहासिक श्रेष्ठता को सदा याद रखते हैं और जो उन्हें अपने जीवन से भी ज्यादा प्यारे हैं। जीवन के हर क्षेत्र में और सभी कार्यकलापों में देश के सभी निवासियों के समान अधिकार और दायित्व हैं। इन अधिकारों और दायित्वों के फलस्वरूप हर हिंदुस्तानी मुस्लिम निस्संदेह भारतीय है, और देश के हर भाग में किसी भी हिंदुस्तानी नागरिक को सरकारी, आर्थिक और अन्य राष्ट्रीय गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में सार्वजनिक नौकरियों में मिलनेवाली सारी सुविधाओं का समान अधिकार है। इसी कारण अन्य हिंदुस्तानियों के साथ मुस्लिमों की भी यह जिम्मेदारी है कि वे देश की आजादी के लिए कोशिश करें और त्याग करें। यह तो एक स्वतः सिद्ध सिद्धांत है और कोई भी विवेकशील मुस्लिम इसकी सच्चाई के बारे में सवाल नहीं उठाएगा। यह सम्मेलन स्पष्ट शब्दों में घोषित करता है और पूरे जोर–शोर से घोषित करता है कि हिंदुस्तानी मुस्लिमों का लक्ष्य पूर्ण आजादी है और उसी के साथ अपने धर्म और सांप्रदायिक हितों की रक्षा करना है और वे इस लक्ष्य को जल्दी से जल्दी प्राप्त करने को उत्सुक हैं इस उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने अतीत में भी बड़े–बड़े त्याग किए हैं और उससे भी ज्यादा बड़े त्याग करने के लिए सदैव तत्पर है।

यह सम्मेलन, खुले तौर पर पुरजोर तरीके से ब्रिटिश साम्राज्यवादियों तथा अन्यों द्वारा भारतीय मुसलमानों पर लगाए गए इस निराधार आरोप का खंडन करता है कि वे भारत की आजादी में बाधक हैं और जोरदार शब्दों में घोषणा करता है कि मुसलमान अपनी जिम्मेदारियों के प्रति पूरी तरह सजग हैं और वे भारत की आजादी की लड़ाई में दूसरों से पीछे रहना अपनी परम्पराओं की प्रतिकूल तथा अपने लिए असम्मानजन समझते हैं।

इस संकल्प के द्वारा उन्होंने पाकिस्तान की योजना को अस्वीकार कर दिया। उनका दूसरा संकल्प निम्नलिखित थाः

इस सम्मेलन का यह सुविचारित दृष्टिकोण है कि भारत के लोगों को भारत की भावी सरकार के लिए सिर्फ वही संविधान मान्य होगा जिसे वयस्क मतदान द्वारा निर्वाचित भारतीयों द्वारा स्वयं तैयार किया जाएगा। संविधान में संविधान सभा के मुस्लिम सदस्यों की सिफारिशों के अनुसार मुस्लिमों के सभी वैध हितों का पर्याप्त प्रावधान होगा। अन्य समुदायों के प्रतिनिधियों या किसी भी बाहरी शक्ति को इन प्रावधानों के निर्धारण में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होगा।

सम्मेलन के इस संकल्प के द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया कि मुस्लिमों के लिए प्रावधान सिर्फ मुस्लिमों द्वारा ही तय किए जाएंगे। उनका तीसरा संकल्प यह हैः

सरकार की स्थिरता तथा देश की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए भारत के भावी संविधान में जहाँ यह आवश्यक समझता है कि मुसलमानों की संतुष्टि के लिए उनके संरक्षण के प्रावधानों की योजना के रूप में निम्नलिखित महत्वपूर्ण विषयों को तैयार करें :

''यह सम्मेलन 27 सदस्यों का एक बोर्ड नियुक्त करता है। यह बोर्ड पूरी जांच, परामर्श और विचार–विमर्श करने के बाद अपनी सिफारिशे तैयार करेगा, जो सम्मेलन के अगले अधिवेशन में प्रस्तुत की जाएंगी, ताकि सम्मेलन में सांप्रदायिक प्रश्न के स्थायी राष्ट्रीय समाधान निकालने में इन सिफारिशों का उपयोग किया जा सके, ये सिफारिशें दो महीने में प्रस्तुत कर दी जानी चाहिए। बोर्ड को विचारार्थ सौंपे गए विषय निम्नलिखित हैं :

1. मुस्लिमों की संस्कृति की व्यक्तिगत कानून और धार्मिक अधिकारों की सुरक्षा।
2. मुस्लिमों के राजनीतिक अधिकार और उनका संरक्षण।
3. हिंदुस्तान का भावी संविधान गैर–एकात्मक और संघीय हो और संघ सरकार के हाथों में नितांत आवश्यक और अपरिहार्य शक्तियां ही रहनी चाहिए।
4. मुस्लिमों के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की रक्षा के लिए और सरकारी नौकरियों में उनके हिस्से के लिए संविधान में प्रावधान हो।
5. बोर्ड को किसी भी खादी पद को उपयुक्त तरीके से भरने का अधिकार होगा। बोर्ड को अन्य सदस्य सहयोजित करने का अधिकार भी होगा। बोर्ड को अन्य मुस्लिम निकायों के विचार करने का भी अधिकार होगा और यदि बोर्ड आवश्यक समझे तो उसे देश के किसी भी जिम्मेदार संगठन से परामर्श करने का अधिकार होगा। बोर्ड के 27 सदस्यों को अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किया जाएगा।
6. बैठक के लिए 9 सदस्यों का कोरम होगा।
7. चूँकि विभिन्न समुदायों के सांप्रदायिक अधिकारों की सुरक्षा का निर्णय सम्मेलन द्वारा पारित प्रस्तावों के अनुसार निर्वाचित संविधान सभा करेगी, इसलिए सम्मेलन यह घोषणा करना जरूरी समझता है कि इस संख्या के मुस्लिम सदस्यों का चुनाव मुस्लिम स्वयं ही करेंगे।

यह जानने के लिए कि आजाद मुस्लिम काफ्रेंस मुस्लिमों की सुरक्षा और संरक्षण के लिए क्या उपाय निर्धारित करेगी, हमें इसे बोर्ड की रिपोर्ट की प्रतीक्षा करनी होगी। परंतु यह आशा करने का कोई कारण नजर नहीं आता कि वे उपाय मेरे द्वारा पाकिस्तान के विकल्प के अनुमानों से कुछ भिन्न होंगे। इस बात की भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि आजाद मुस्लिम कांफ्रेंस ऐसे मुस्लिमों की संस्था है जो न केवल मुस्लिम लीग के विरोधी हैं, बल्कि नेशनलिस्ट मुस्लिमों के भी उतने ही विरोधी है। इसलिए यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं कि वे हिंदुओं के प्रति उससे अधिक सदाशयता दिखाएंगे, जितनी लीग ने दिखाई है या दिखाएगी।

मान लीजिए कि मेरा अनुमान ठीक निकलता है, तो यह जानना रूचिकर होगा कि हिंदू इसके उत्तर में क्या कहेंगे। क्या वे पाकिस्तान के ऐसे विकल्प को अधिक पसंद करेंगे अथवा ऐसे विकल्प की तुलना में पाकिस्तान को ही तरजीह देंगे? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर मैं हिंदुओं और उनके नेताओं पर छोड़ता हूँ। मैं तो इस बारे में सिर्फ यह कहना चाहूँगा कि इस प्रश्न पर अपना दृष्टिकोण निर्धारित करते समय वे कुछ महत्वपूर्ण बातों को अपने ध्यान में रखें। विशेष रूप से उन्हें इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि मात्र पॉलिटिक और ग्रावामिन पॉलिटिक में अंतर होता है, कम्यूनिटास कम्यूनिटेटम में और नेशन ऑफ नेशंस में अंतर होता है। निर्बलों की आशंकाएं दूर करने वाले रक्षोपायों और ताकतवर लोगों की आकांक्षाएं पूरी करने के कपटपूर्ण उपायों में अंतर होता है। रक्षोपायों की व्यवस्थाएं करने और देश को सौंप देने के बीच अंतर होता है। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि शिकायतें बनाकर सत्ता हथियाने वालों को जो आराम से दिया जा सकता है, यह सत्ता की राजनीति वालों को नहीं दिया जा सकता। जो एक संप्रदाय को दिया जा सकता है, वह एक राष्ट्र को नहीं दिया जा सकता। और जो कुछ एक निर्बल को उसकी रक्षा करने के उपाय स्वरूप दिया जा सकता है, यह शायद एक ताकतवर को न दिया जा सके, जो उसका उपयोग आक्रमण के हथियार के रूप में कर सकता है।

ये महत्वपूर्ण विचारार्थ विषय है, और यदि हिंदुओं ने इनकी अनदेखी कर दी तो उन्हें स्वयं भी इसके दुष्परिणाम भुगतने पड़ेंगे। यह इसलिए कि मुस्लिम, विकल्प वास्तव में एक अत्यंत भयावह और खतरनाक विकल्प है।

साभार :
बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–15
पेज संख्या 187 से 196 तक
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

चौथा भाग – ज्ञान–लाभ और नवीन–मार्ग का दर्शन

1. नये प्रकाश के निमित्त ध्यान–साधना

1. अपने आपको उस भोजन से तरो–ताजा करके, गौतम अपने पूर्व–अनुभवों पर विचार करने के लिए बैठा। उसको यह स्पष्ट हो गया कि अभी तक के अपनाये सभी मार्ग विफल रहे।

2. विफलता इतनी अधिक थी कि किसी को भी सम्पूर्ण रूप से निराश कर सकती थी। खेद तो उसे भी था। किन्तु निराशा उसे छू तक न गई थी।

3. उसे विश्वास था कि उसे रास्ता मिलकर रहेगा। इतना अधिक कि जिस दिन उसने सुजाता की दी हुई खीर ग्रहण की उसने पांच स्वप्न देखे। उसने अपने स्वप्नों की यही व्याख्या की कि उसे 'बोधि' प्राप्त होकर रहेगी।

4. उसने अपना भविष्य देखने की भी कोशिश की। जिस स्वर्ण–पात्र में सुजाता की दासी उसके लिए खीर लाई थी उसने उस स्वर्ण–पात्र को नेरंजरा नदी में फेंक दिया और कहा – ''यदि मुझे 'बोधि' प्राप्त होने वाली है तो यह पात्र धारा के ऊपर की ओर जाय, अन्यथा नीचे की ओर।'' पात्र सचमुच धारा के विरूद्ध ऊपर की ओर जाने लगा और तब काल नाम के नाग–राजा के भवन के पास जाकर पानी में डूब गया।

5. आशा और दृढ़ संकल्प से सम्बद्ध होकर उसने उरुवेला छोड़ दिया और राज–पथ पर आगे बढ़ कर गया जा पहुंचा। वहां उसने एक पीपल का वृक्ष देखा। नये–प्रकाश की आशा में जिससे वह अपनी समस्या का हल निकाल सके उसने इस वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर बैठने की ठानी।

6. अन्य सभी दिशाओं के विचार कर के उसने पूर्व–दिशा का चुनाव किया। क्लेशों (= चित्तमलों) के क्षय के निमित्त ऋषियों ने प्रायः पूर्व दिशा को ही चुना है।

7. उस पीपल के वृक्ष के नीचे गौतम सीधा पद्मासन लगाकर बैठा। 'बोधि' प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प करते हुए उसने निश्चय किया–''चाहे मेरी त्वचा, नसें और हड्डियां ही बाकी रह जायें, चाहे मेरा सारा मांस और रक्त शरीर में ही सूख जाय, किन्तु बिना 'बोधि' प्राप्त किये मैं इस स्थान का परित्याग नहीं करूंगा।''

8. नाग–पति के समान तेजस्वी काल नाम का नाग–राज और उसकी स्वर्ण–प्रभा की पत्नी पीपल के वृक्ष के नीचे आसनस्थ गौतम के दर्शन से जाग्रत हो उठे थे। इस विश्वास के साथ कि वह निश्चयात्मक रूप से 'बोधि' लाभ करेगा, उन्होंने इस प्रकार उसकी स्तुति की–

9. ''हे मुनि! क्योंकि तुम्हारे पांव के नीचे दबी पृथ्वी बार बार गुंजायमान होती है, और क्योंकि तुम सूर्य के समान तेजस्वी हो, इसलिए तुम निश्चय से 'बुद्ध' होगे।

10. ''क्योंकि आकाश में विचरने वाले पक्षी भी तुम्हें नमस्कार कर रहे हैं और क्योंकि आकाश में मन्द मन्द मलयानिल बह रहा है, इसलिए भी हे कमलाक्ष! तुम निश्चय से 'बुद्ध' होंगे।''

11. जब वह ध्यान करने के लिये दृढ़ आसन लगा कर बैठा तो बुरे–विचारों और बुरी–चेतनाओं के झुण्ड के झुण्ड ने – जिन्हें पौराणिक भाषा में मार–पुत्र कहा गया है– उस पर आक्रमण किया।

12. गौतम को डर लगा कि कहीं ये उस पर काबू न जायें और उसकी साधना को विफल न कर दें।

13. वह जानता था कि इस मार–युद्ध में बहुत से ऋषि–ब्राह्मण पराजित हो चुके हैं।

14. इसलिए उसने अपना सारा साहस बटोर कर मार से कहा– ''मुझमें श्रद्धा है, मुझमें वीर्य्य है, मुझमें प्रज्ञा है। हे मार! तू मुझे कैसे पराजित कर सकता है? चाहे वायु इस नदी के स्त्रोत को सुखाने में भी सफल हो जाय किन्तु तू मुझे मेरे निश्चय से नहीं डिगा सकता। पराजित होकर जीते रहने की अपेक्षा संग्राम में मर जाना मेरे लिए अधिक श्रेयस्कर है।''

15. उस कौए की भांति जो बहुत सी चर्बी प्राप्त करने की आज्ञा से किसी पत्थर पर जाकर ठोंगे मारता है कि यहां से कुछ मधुर–मधुर मेरे हाथ लगेगा, मार ने भी गौतम पर आक्रमण किया था।

16. जब कौये को कहीं भी कुछ मधुर नहीं प्राप्त होता तो वह वहां से चल देता है। ठीक उसी कौए की तरह जब मार को भी कहीं कुछ गुंजाइश न दिखाई दी तो वह निराश होकर गौतम को छोड़कर चल दिया।

2. ज्ञान–लाभ

1. ध्यान करने के समय के लिये गौतम ने इतना भोजन इकट्ठा करके पास रख लिया था कि चालीस दिन तक कमी न पड़े।

2. विघ्नकारी अकुशल विचारों का मूलोच्छेद कर सिद्धार्थ गौतम ने अब भोजन ग्रहण करके अपने आप को तरो–ताजा कर लिया था और सशक्त हो गया था। इस प्रकार उसने 'बोधि' प्राप्त करने के निमित्त ध्यान करने की अपनी तैयारी कर ली थी।

3. ज्ञान–प्राप्ति के लिए गौतम को चार सप्ताह तक लगातार ध्यान–मग्न रहना पड़ा। उसे अन्तिम अवस्था तक पहुंचने के लिए चार सीढ़ियां पार करनी पड़ीं।

4. पहली अवस्था वितर्क और विचार प्रधान थी। एकान्त वास के कारण वह इसे बड़ी सरलता से प्राप्त कर सका।

5. दूसरी अवस्था में इसमें एकाग्रता आ शामिल हुई।

6. तीसरी अवस्था में समचित्तता तथा जागरूकता का समावेश हो गया।

7. चौथी और अन्तिम अवस्था में समचित्तता तथा पवित्रता का संयोग हो गया और समचित्तता तथा जागरूकता का।

8. जब उसका चित्त एकाग्र हो गया था, जब वह पवित्र हो गया था, जब वह निर्दोष बन गया था, जब उसमें तनिक भी कलुष नहीं रह गया था, जब वह सुकोमल हो गया था, जब वह दक्ष हो गया था, जब उसमें दृढ़ता आ गई थी, जब वह सर्वथा राग–रहित हो गया था तथा जब उसकी नजर एक–मात्र अपने उद्देश्य पर ही थी, तब गौतम ने अपना सारा ध्यान एक समस्या के हल करने में लगाया जो उसे हैरान कर रही थी।

9. चौथे सप्ताह के अन्तिम दिन उसका पथ कुछ प्रकाशित हुआ। उसे स्पष्ट दिखाई दिया कि उसके सामने दो समस्यायें हैं – पहली समस्या यही थी कि संसार में दुःख है और दूसरी समस्या यही थी कि किसी प्रकार इस दुःख का अन्त किया जाय और मानव–जाति को सुखी बनाया जाय?

10. इस तरह चार सप्ताह तक लगातार चिन्तन करते रहने के बाद अन्धकार विलीन हुआ, प्रकाश प्रकट हुआ, अविद्या का नाम हुआ, ज्ञान अस्तित्व में आया, उसे एक नया–पथ दिखाई दिया।

3. नये धर्म का आविष्कार

1. जिस समय गौतम ध्यान लगाकर बैठा उस समय उस पर सांख्य–दर्शन का बड़ा प्रभाव था।

2. संसार में कष्ट और दुःख है – यह तो एक ऐसा यथार्थ सत्य था, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता था।

3. लेकिन गौतम इस बात का पता लगाना चाहता था कि दुःख को दूर कैसे किया जाय? सांख्य–दर्शन के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर न था।

4. इसलिए उसने अपना सारा ध्यान इसी एक प्रश्न के हल करने में लगाया कि संसार के कष्ट और दुःख को कैसे दूर किया जाय?

5. स्वाभाविक तौर पर पहला प्रश्न जो उसने अपने आपसे पूछा, वह यही था कि वे कौन से कारण है, वे कौन से हेतु हैं जिनकी वजह से एक व्यक्ति कष्ट उठाता और दुःख भोगता है?

6. उसका दूसरा प्रश्न था– दुःख का नाश कैसे किया जाय?

7. इन दोनों प्रश्नों का ही उसे सही–सही उत्तर मिल गया– यही सम्यक् सम्बोधि कहलाता है।

8. इसी कारण पीपल का वह वृक्ष भी – जिसके नीचे बैठ कर सिद्धार्थ गौतम ने ज्ञान प्राप्त किया था – बोधि वृक्ष कहलाता है।

4. सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करके बोधिसत्व गौतम सम्यक् सम्बुद्ध हो गये

1. ज्ञान–प्राप्ति के पूर्व गौतम केवल एक बोधिसत्व थे। ज्ञान–प्राप्ति के बाद ही वह बुद्ध बने।

2. बोधिसत्व कौन और क्या होता है?

3. जो प्राणी बुद्ध बनने के लिए प्रयत्नशील रहता है उसे 'बोधिसत्व' कहते हैं।

4. एक बोधिसत्व 'बुद्ध' कैसे बनता है?

5. बोधिसत्व को लगातार दस जन्मों तक 'बोधिसत्व' रहना पड़ता है, 'बुद्ध बनने के लिए एक 'बोधिसत्व' को क्या करना होता है?

6. एक जन्म में वह 'मुदिता' प्राप्त करता है। जैसे सुनार सोने–चांदी के मैल को दूर करता है। उसी प्रकार एक 'बोधिसत्व' अपने चित्त के मैल को दूर करके इस बात को स्पष्ट रूप से देखता है कि जो आदमी चाहे पहले प्रमादी रहा हो, लेकिन यदि वह प्रमाद का त्याग कर देता है तो वह बादल–मुक्त चन्द्रमा की तरह इस लोक को प्रकाशित करता है। जब उसे इस बात का बोध होता है तो उसके मन में मुदिता उत्पन्न होती है और उसके मन में सभी प्राणियों का कल्याण करने की उत्कष्ट इच्छा उत्पन्न होती है।

7. अपने दूसरे जन्म में वह 'विमला भूमि' को प्राप्त होता है। इस समय बोधिसत्व काम–चेतना से सर्वथा मुक्त हुआ रहता है। वह कारुणिक होता है, सबके प्रति कारुणिक। न वह किसी के अवगुण को बढ़ावा देता है और न किसी के गुण को घटाता है।

8. अपने तीसरे जीवन में वह प्रभाकारी–भूमि प्राप्त करता है। इस समय बोधिसत्व की प्रज्ञा दर्पण के समान स्वच्छ हो जाती है। वह अनात्म और अनित्यता के सिद्धान्त को पूरी तरह से समझ लेता है और हृदयग्म कर लेता है। उसकी एकमात्र आकांक्षा ऊंची से ऊंची प्रज्ञा प्राप्त करने की होती है और इसके लिये वह बड़े से बड़े त्याग करने के लिये तैयार रहता है।

9. अपने चौथे जीवन में वह अर्चिष्मती–भूमि को प्राप्त करता है। इस जन्म में बोधिसत्व अपना सारा ध्यान अष्टांगिक मार्ग पर केन्द्रित करता है, चार सम्यक् व्यायामों पर केन्द्रित करता है, चार प्रयत्नों पर केन्द्रित करता है तथा चार प्रकार के ऋद्धि–बल पर केन्द्रित करता है, और पांच प्रकार के शील पर केन्द्रित करता है।

10. पांचवें जीवन में वह सुदुर्जया भूमि को प्राप्त करता है। वह सापेक्ष तथा निरपेक्ष के बीच के सम्बन्ध को अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लेता है।

11. अपने छठे जीवन में वह अभिमुखी भूमि प्राप्त होता है। अब इस अवस्था में चीजों के विकास, उनके कारण बारह निदानों के हृदयङ्गम करने की बोधिसत्व की पूरी पूरी तैयारी हो चुकी है, और यह 'अभिमुखी' नामक विद्या उसके मन में सभी अविद्या ग्रस्त प्राणियों के लिये असीम करुणा का संचार कर देती है।

12. अपने सातवें जीवन में बोधिसत्व दूरङ्गमा भूमि प्राप्त करता है। अब बोधिसत्व देश, काल के बन्धनों से परे है, वह अनन्त के साथ एक हो गया है, किन्तु अभी भी वह सभी प्राणियों के प्रति करुणा का भाव रखने के कारण देह–धारी है। वह दूसरों से इसी बात में पृथक है कि अब उसे भव–तृष्णा उसी प्रकार स्पर्श नहीं करती जैसे पानी किसी केवल को। वह तृष्णा–मुक्त होता है, वह दान–शील होता है, वह क्षमा–शील होता है, वह कुशल

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

होता है, वह वीर्यमान् होता है, वह शान्त होता है, वह बुद्धिमान होता है तथा वह प्रज्ञावान होता है।

13. अपने इस जीवन में वह धर्म का जानकार होता है लेकिन लोगों के सामने वह उसे इस ढंग से रखता है कि उनकी समझ में आ जाय। वह जानता है कि उसे कुशल तथा क्षमाशील होना चाहिये। दूसरे आदमी उसके साथ कुछ भी व्यवहार करें वह उद्विग्नता–रहित होकर उसे सह लेता है, क्योंकि वह जानता है कि अज्ञान के कारण ही वह उसके मंशा को ठीक–ठीक नहीं समझ पा रहे हैं। इसके साथ–साथ वह दूसरों का भला करने के अपने प्रयास में तनिक भी शिथिलता नहीं आने देता, और न वह अपने चित्त को प्रज्ञा से इधर–उधर भटकने देता है, इसलिये उस पर कितनी भी विपत्तियां आयें वे उसे सुपथ से कभी नहीं हटा सकती।

14. अपने आठवें जीवन में वह 'अचल' हो जाता है। 'अचल' अवस्था में बोधिसत्व कोई प्रयास नहीं करता। वह कृत–कृत्य हो जाता है। उससे जो भी कुशल–कर्म होते हैं वे सब अनायास होते हैं। जो कुछ भी वह करता है उसमें सफल होता है।

15. अपने नौवे जीवन में वह साधुमती–भूमि प्राप्त हो जाता है। जिसने तमाम धर्मो को या पद्धतियों को जी लिया है अथवा उनके भीतर प्रवेश पा लिया है, सब दिशाओं को जीत लिया है, समय की सीमाओं को लांघ गया है, वही 'साधुमती' अवस्था प्राप्त कहलाता है।

16. अपने दसवें जीवन में बोधिसत्व 'धर्म–मेधा' बन जाता है। उसे 'बुद्ध' की दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

17. बुद्ध होने की अवस्था के आवश्यक इन दसों बलों (= भूमियों) को बोधिसत्व प्राप्त करता है।

18. एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होने पर बोधिसत्व को न केवल इन दस भूमियों को प्राप्त करना होता है बल्कि उसे दस पारमिताओं को भी पूर्णता को पहुंचाना होता है।

19. एक जन्म में एक पारमिता की पूर्ति करनी होती है। पारमिताओं की पूर्ति क्रमशः करनी होती है। एक जीवन में एक पारमिता की पूर्ति करनी होती है, ऐसा नहीं कि थोड़ी एक, थोड़ी दूसरी।

20. जब दोनों तरह से वह समर्थ सिद्ध होता है तभी एक बोधिसत्व बुद्ध बनता है। बोधिसत्व के जीवन की पराकाष्ठा ही 'बुद्ध' बनना है।

21. जातकों का सिद्धान्त अथवा बोधिसत्व के अनेक जन्मों का सिद्धान्त ब्राह्मणों के अवतारवाद के सिद्धान्त से सर्वथा प्रतिकूल है अर्थात् ईश्वर के अवतार धारण करने के सिद्धान्त से।

22. जातक कथाओं का आधार है कि बुद्ध के व्यक्तित्व में गुणों की पराकाष्ठा का समावेश हुआ है।

23. अवतार–वाद के अनुसार भगवान् को अपने अस्तित्व में निर्मल होने की आवश्यकता नहीं। ब्राह्मणी अवतारवाद की ब्राह्मणी–सिद्धान्त यही कहता है कि ईश्वरावतार चाहे अपने आचरण में अपवित्र और अनैतिक ही क्यों न हो, किन्तु वह अपने अनुयायियों की– अपने भक्तों की–रक्षा करता है।

24. बुद्ध बनने से पूर्व बोधिसत्व के लिये दस जन्मों तक श्रेष्ठतम जीवन की शर्त और किसी धर्म में भी नहीं है। यह अनुपम है। कोई भी दूसरा धर्म अपने संस्थापक के लिये इस प्रकार की परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक नहीं ठहराता।

साभार :
भगवान बुद्ध और उनके धर्म
पेज संख्या 62 से 67
डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

रमाबाई अंबेडकर (परिनिर्वाण : 27 मई 1935)

जब तक लोगों के हृदय में बाबा साहब डा. अंबेडकर यादगार बनकर धड़कते रहेंगे तब तक एक और नाम साथ–साथ लिया जाता रहेगा। वह नाम है रमाबाई अंबेडकर का। रमाबाई का संपूर्ण व्यक्तित्व निश्चित ही संघर्ष से ओतप्रोत रहा है। इसी कारण यह बात भी कही जा सकती है कि अगर रमाबाई डा. अंबेडकर की पत्नी न होती तो बाबा साहब के जीवन की धारा शायद वैसी न होती। वह रमाबाई ही थी जिन्होंने बाबा साहब की प्रगति के मार्ग में अवरोध बनकर नहीं बल्कि हर तरह के कष्ट सहन करते हुए भी एक आदर्श महिला की भूमिका निभाई।

रमाबाई का जन्म 1898 में महाराष्ट्र के दापोली नगर के नजदीक वजंदगांव में हुआ था। इनके पिता का नाम भिकू धुत्रे तथा माता का नाम रूक्मणी धुत्रे था। भिकू धुत्रे का परिवार अत्यंत ही गरीब था। गरीबी के साथ–साथ परिवार में लगभग सभी अशिक्षित थे। उस समय महिलाओं की स्थिति तो और भी खराब थी। परिवार में अगर पुरूष अनपढ़ तो महिलाओं को भी अनपढ़ ही रहना पड़ता था। ऐसे बहुत कम उदारण मिलते हैं जब किसी परिवार में पुरूष अशिक्षित हो और महिला शिक्षित। महिलाओं की स्थिति तो और भी भयानक थी। वे दलितों में दलित थीं। परिवार के अंदर और बाहर दोनों तरफ अंधकार ही थी। ऊपर से सामाजिक परंपरायें अलग।

ऐसे ही समय में रमाबाई का जन्म एक साधारण परिवार में हुआ था। पर असामान्य बात यह थी कि उनका विवाह एक असाधारण और प्रतिभावन पुरूष से हुआ। रमाबाई के पिता दापोली के बंदरगाह में मजदूरी किया करते थे। चूंकि उनके पिता की मजदूरी से घर का गुजारा न हो पाता था। इसलिए उनकी मां रूक्मणी भी गोबर के उपले बनाकर बेचने का कार्य करती थी। रमाबाई बचपन से ही बेहिचक अपनी मां के कार्य में हाथ बंटाती थी।

कम आयु में ही रमाबाई की माता का देहांत हो गया था। ऐसे में उन्हें और भी परेशानी का सामना करना पड़ा था। रूक्मणी बाई अपने पीछे एक बेटा तथा तीन बेटियों को छोड़कर चल बसी थीं। अब परिवार में उन्होंने मां और बहन दोनों की भूमिका निभाई। घर में वह पिता के कार्यों में भी हाथ बंटाती थीं। घर में काम–काज करने के साथ–साथ वह बहन तथा भाई की देखभाल करती। बाहर से गोबर लाना तथा उपले बनाकर बेचने की जिम्मेदारी भी उसे संभालनी पड़ी थी। वह समय की मांग भी थी।

नौ वर्ष की आयु में रमाबाई का विवाह डा. अंबेडकर से हुआ। उस समय उनकी उम्र 17 वर्ष थी। जिस स्थल पर विवाह समारोह संपन्न हुआ। वह बंबई का भायखला बाजार था जहां पर घुटनों तक गंदा पानी भरा था। आसपास के वातावरण में मछलियों की दुर्गंध अलग। बाराती इसी मंडी में रात दुकानें बंद होने के पश्चात पहुंचे थे। लड़की के माता–पिता एक कोने में और बाराती दूसरी तरफ। ऐसे ही परिवेश में विवाह की रस्म पूरी हुई। कैसा अजीब लगता है आज यह सब पढ़कर भी।

यहीं से रमाबाई के जीवन में एक नया मोड़ आया था। रमाबाई आरंभ से ही घर गृहस्थी के कार्यों में निपुण तो थी ही। अतः विवाह के पश्चात अंबेडकर परिवार में वह घुलमिल गयी। डा. अंबेडकर नारी शिक्षा के समर्थक तो थे ही। इसलिए उन्होंने रमाबाई को साक्षर बनाने में पूरी–पूरी मदद की। रमाबाई ने भी मन लगाकर अपने पति को आदर्श गुरू मानकर पढ़ाई पूरी की।

अधिकांश समय बाबा साहब डा. अंबेडकर घर से बाहर ही रहा करते थे। कभी विदेश में अध्ययन तो कभी किसी सभा–सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए। अतः ऐसे में रमाबाई को दोहरी जिम्मेवारी निभानी पड़ती थी। परिवार की देखभाल करने के साथ–साथ वे अपनी ओर से कोई ऐसी बात न होने देती थी जिससे डा. अंबेडकर के रास्ते में रूकावट आए। वह हमेंशा उन्हे प्रेरणा देती थीं।

रमाबाई ने एक बार बाबा साहब से कहा था, "आपके उद्देश्यपूर्ण कार्य में कभी भी बाधा नहीं बनूंगी। कम–से–कम मेरी तरफ से आप निश्चिंत रहें।" यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि बाबा साहब के लंदन जाने में रमाबाई ने पैसा–पैसा बचाकर आर्थिक मदद की थी।

जहां बाबा साहब एक ओर दलित समाज में चेतना लाने के अभियान में जुटे थे। वहीं दूसरी तरफ रमाबाई भी महिलाओं के बीच कार्य करने में पीछे न रहीं। हालांकि उनके पास बड़ी डिग्रियां न थीं, पर दलित और पिछड़े समाज की महिलाओं के बीच बहुत शीघ्र ही उन्होंने अपना प्रभाव छोड़ा था। दलित बस्तियों में वे घर–घर जाकर बैठकें करती तथा बाबा साहब डा. अंबेडकर द्वारा आरंभ की गई सामाजिक क्रांति के संघर्ष में सहयोग देती थीं।

नासिक के कालाराम मंदिर में दलितों के प्रवेश के लिए 2 मार्च 1930 को एक सभा हुई थी। जिसमें सत्याग्रह की घोषणा की गई। कालाराम मंदिर की तरफ जाने के लिए दलितों का एक अनुशासित जुलूस आयोजित किया गया था। इसमें काफी संख्या में महिलाएं भी सम्मिलित थीं। उस समय भाऊराम गायकवाड़ की पत्नी सीताबाई तथा रमाबाई ने महिला साथियों के साथ कार्यकर्ताओं के खाने–पीने का प्रबंध किया था।

बहुत कम लोगों को मालूम है कि जनवरी 1928 में बंबई में महिला मंडल की स्थापना हुई थी। जिसकी अध्यक्षा रमाबाई को बनाया गया था। उक्त महिला मंडल के माध्यम से वे घर–घर जाकर जीवनपर्यंत महिलाओं के बीच चेतना जगाती रही थी। पर वह संघर्षशील पति–परायण नारी परिश्रम के कारण उनके शरीर में बीमारी बैठ गई जो बाद में चलकर लाइलाज बन गई थी और 27 मई 1935 को पुत्र यशवंतराव तथा पति अंबेडकर को छोड़कर वह आदर्श नारी चल बसीं।

रमाबाई एक धर्मनिष्ठ और ईश्वर में विश्वास रखने वाली ऐसी भारतीय नारी थी जिसने अंतिम समय तक भी अपनी आस्था में परिवर्तन न होने दिया था। रमाबाई ने पांच पुत्रों को जन्म दिया था, लेकिन उनमें केवल यशवंत ही जिंदा रह पाये थे। बाबा साहब डा. अंबेडकर अपनी पत्नी रमाबाई को कितना महत्व देते थे यह इसी बात से सिद्ध होता है कि 'पाकिस्तान और भारत का विभाजन' पुस्तक को उन्होंने रमाबाई को समर्पित किया था।

निश्चित ही त्यागमय मूर्ति रमाबाई उन हजारों–लाखों दलित महिलाओं के लिए प्रेरणा बनी थीं जिनका जीवन मानव का होने के बाद भी वे जानवरों जैसी जिंदगी जीने को लाचार थीं। रमाबाई उन सभी के लिए मशाल बनकर अमर हो गईं। वह मशाल थी सामाजिक परिवर्तन की। आज, विशेषकर महाराष्ट्र में, दलित समाज की महिलाओं के बीच जो जागृति देखी और महसूस की जाती है, उसकी पृष्ठभूमि में सावित्री बाई फुले, रमाबाई तथा इसी तरह की अन्य जुझारू और साहसी महिलाओं का योगदान था, जिन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता।

साभार – समता की ओर
(मोहनदास नेमीशराय)
पृ.सं. 32 से 35 तक

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

विदेशी पहचान छिपाने का धूर्त प्रयास

भारत के मूल निवासियों को आपस में लड़ाना, मतभेद पैदा करना और उन पर राज करके सुख भोगना, विदेशी आर्य ब्राह्मणों की पुरानी पहचान रही है। इन्हें मालूम था कि इनकी चालबाजी एक दिन पकड़ी जायेगी, इसीलिए इन्होंने उत्तर वैदिक धर्मशास्त्रों में शूद्रों के प्रति कई निर्योग्यताएँ लाद दीं। शास्त्रों में यह भी लिखा है कि शूद्र वेद पढ़े तो जीभ काट देना चाहिए, सुने तो कान में शीश पिघलाकर डालना चाहिए और याद कर लें तो शरीर टूकड़े–टूकड़े कर देना चाहिए (गौतम धर्मसूत्र)। आज आनुवंशिक शोधों से यह प्रमाणित हुआ है कि आर्य ब्राह्मण विदेशी और आक्रमणकारी है, तो ये देश में कई तरह के विरोधाभास पैदा करने में लग गये हैं ताकि बहुजनों में एकता नहीं बन सके तथा असली मुद्दा गौण हो जाये। जब आर्य ब्राह्मणों को लगा कि वे विदेशी हैं और अल्प संख्या में हैं तो उन्होंने मुसलमान आक्रमणकारियों का दिया हुआ नाम 'हिन्दू' अपना लिया और इस नाम को मूलनिवासियों पर थोप लिया ताकि उन पर 'हिन्दू' के नाम पर दीर्घ काल तक राज किया जा सके। यह सर्वविदित है कि 'हिन्दू' नाम मुसलमानों की देन है। इस प्रकार 'हिन्दू' शब्द भी इंडिया की तरह विदेशी ही है।

विदेशी आर्य ब्राह्मणों ने अपने कुत्सित उद्देश्यों के पूर्ति हेतु बेशर्म दलीलें देने लगे कि सिन्धुघाटी सभ्यता के समकालीन एक सभ्यता विकसित हुई थी, जिसका नाम था 'सरस्वती सिंधु सभ्यता। ऋग्वेद में उल्लेखित सरस्वती नदी का संबंध वे वर्तमान के 'घाघरा' नदी से जोड़ने लगे, तथा कहने लगे कि सिंधुघाटी सभ्यता ही वास्तव में सरस्वती सिंधु सभ्यता है, जो वर्तमान में हिन्दू सभ्यता/ब्राह्मणी सभ्यता के नाम से जाना जाता हैं। यह एक कपट भरा निर्लज्ज तर्क है। वास्तव में ऋग्वेद में वर्णित सरस्वती नदी ईरान के 'हरहवैती' नदी को इंगित करता है। 'सरस्वती' का अर्थ होता है सर = पानी + स्वती = बहता हुआ। ऋग्वेद में इसका उल्लेख मूलतः धन (ऋ0–6/61/3,4,6,11,14) की देवी एवं शक्तिमान जलस्त्रोत के रूप में हुआ है। ऋग्वेद का अन्तःसाक्ष्य बताता है कि इस नदी का मूल जल–भरण स्त्रोत पहले ही लुप्त हो चुका था और इसीलिए यह नदी एक सीमावर्ती झील (समुद्र) में जा समाती रही होगी। ब्राह्मण साहित्य (जैमिनीय ब्राह्मण–2.29,7) में लिखा मिलता है कि सरस्वती रेगिस्तान में विनशन/उपमज्जन नामक स्थान पर विलुप्त हो गई।

'उच्चवर्णी जातियाँ, आर्ययूरेशियन हैं, आनुवंशिक शोध से प्रमाणित के लेखक डॉ. पी. डी. सत्यपाल लिखते हैं कि ''राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से संबंध रखने वाले स्वयंभू वैदिक इतिहासकारों, साहित्यकारों एवं पुरातत्वेताओं जैसे–एस. तालेगारी, के.डी. सठना, एस.पी. गुप्ते, बी.एस. गिडवानी आदि ने अपने धोखा भरी बातों से यह प्रमाणित करने की कोशिश की कि आर्य लोग विदेशी नहीं हैं। इसके लिए उन्होंने बाबासाहब डा. अम्बेडकर के नाम का भी दुरुपयोग किया है ताकि मूलनिवासियों में इस कपटपूर्ण तर्क की स्वीकृति मिल सके। हिन्दूवादी विद्वानों ने इसके लिए नकली खुदाई कराकर स्वयं द्वारा प्रत्यापित सामग्रियों को निकालकर कम्प्यूटर के द्वारा अपने तर्क को प्रमाणित करने की कुचेष्ट किया। इस संदर्भ में एन.एस. राजाराम नामक साफ्टवेयर व्यवसायी तथा स्वयंभू इतिहासकार का छल तब पकड़ लिया गया जब वह मूलनिवासी संस्कृति के प्रतीक 'साँड़' को विदेशी आर्य संस्कृति के प्रतीक 'घोड़ा' के रूप में परिवर्तन करने की कोशिश कर रहा था।

''तालेगरी साहब ने पुराणों के साक्ष्य को विश्वसनीय मानते हुए आर्यों के मूल निवास उत्तर प्रदेश होने की बात कही है परन्तु भाषा विज्ञानी और वैदिक साहित्य के प्रकांड पंडित माइकेल विट्जेल के अनुसार पुराण साहित्य के रचना का उद्देश्य धर्मोपदेश मात्र है। इसका उद्देश्य ऐतिहासिक या तर्कपरक पांडित्य प्रदर्शन कदापि नहीं था इसलिए आज भी पुराण साहित्य पर केवल धार्मिक दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है।'' तालेगरी ने अपने दावे की पुष्टि में ऋग्वेद में प्रयुक्त 'जाह्नवी' शब्द का हवाला दिया है, जिसे उन्होंने गंगा के पर्यायवाची अर्थ में लिया है। ऋग्वेद में 'जाह्नवी' शब्द का प्रयोग मात्र दो बार संख्या 1/116/16 और 3/56/6 में हुआ है। माइकेल विट्जेल ने गंभीर गवेषणा के पश्चात् यह निष्कर्ष निकला है कि दोनों प्रसंगों में 'जाह्नवी' का अर्थ गंगा नहीं है, यह एक कबीलाई शब्द है। इस तथ्य को सायण सहित ऋग्वेद के अन्य भाष्यकारों ने माना है। इस प्रकार विट्जेल के शब्दों में तालेगरी ने अन्यत्र कहीं इस शब्द का वास्तविक अर्थ जाने 'जाह्नवी' को गंगा नदी का पर्याय मानने में जल्दी बाजी कर दी। अतः ऋग्वेद में 'जाह्नवी' शब्द गंगा क्या, किसी अन्य नदी का भी पर्याय नहीं है। यह गंगा के अर्थ में केवल पुराणों और महाकाव्यों में लिखा मिलता है जो एक अनोखा विचार है। यदि यह मान लिया जाय कि ऋग्वेद की रचना पंजाब में हुई थी और इसकी रचना काल 4000–5000 ई.पू. है जैसा कि मनुवादी इतिहासकारों का दावा है तो फिर प्रश्न उठते हैं कि ऋग्वेद में घोड़े का पालतू पशु के रूप में उल्लेख क्यों मिलता है? जबकि भारतीय उपमहाद्वीप में 1500 ई. पू. से पहले घोड़े का अस्तित्व था ही नहीं, अविवाहित रथों का उल्लेख क्यों मिलता है? रथ का निर्माण सर्वप्रथम दक्षिणी रूस में 2000 ई. पू. के आसपास हुआ था। डॉ. नवल वियोगी लिखते हैं कि ''हड़प्पाई सीलों में जिनमें विभिन्न जानवरों के चित्र खुदे हैं, कोई भी घोड़े का चित्र नहीं मिला। अगर सिंधु घाटी के लोग आर्य होते तो अवश्य ही उन्होंने उन सीलों में घोड़े को स्थान दिया होता। हड़प्पाई सभ्यता में पायी गई हड्डियों से निश्चित रूप से प्रमाणित नहीं होता कि 2000 ई. पू. से पहले भारतीय प्रायद्वीप में घोड़े का कहीं अस्तित्व था। मगर उसके बाद आश्चर्य जनक ढंग से उसका विकास होता है। धर्मानंद कोसाम्बी ने लिखा है कि ''आर्य आक्रमण से पहले दास (अनार्य) घोड़ों से परिचित नहीं थे, कारण मोहनजादड़ों और हड़प्पा में मिले सिक्कों पर अन्य पशुओं के चित्र तो अंकित किये गये हैं पर घोड़े का एक भी चित्र नहीं मिला। इसलिए दास लोगों के पराजय के अनेक कारणों में उनके पास घुड़सवार का न होना, भी एक मुख्य कारण रहा होगा। ऋग्वेदकालीन लोग जौ खाते थे, यदि ऋग्वेद की रचना सिंधु सभ्यता से पहले पंजाब में हुई होती तो कम–से–कम इसमें यहाँ के मुख्य अनाज गेहूँ की चर्चा यत्र–तत्र अवश्य होनी चाहिए थी। यदि ऋग्वेद को 5000 ई. पू. की रचना माना जाय तो इसमें केवल 'पुर' का ही उल्लेख क्यों है, सिंधु सभ्यता के बड़े–बड़े ईंटों वाले मानव निर्मित घरों, गावों और नगरों का उल्लेख क्यों नहीं है? ऋग्वेद में जो भी चर्चा है वह 'भग्नावशेषो' की है। वैदिक साहित्य में 'ग्राम' शब्द अस्थायी और 'चल' आवास का वाचक है।

21वीं सदी में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने बी.जे.पी. सरकार के माध्यम से सभी वैज्ञानिक एवं शैक्षिक संस्थानों जैसे ICHR, IAAS, UGC, CSRI, NCERT इत्यादि में अपने लोगों को भर दिया ताकि इच्छानुसार पाठ्यक्रमों को बदला जा सके तथा सभी वैज्ञानिक खोजों को वेद, रामायण, महाभारत के अस्त्र–शस्त्रों से जोड़ा जा सके। यही कारण है कि जब मिशाइल मैन ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने मिसाइल निर्माण किया तो हिन्दूवादी सरकार ने कहा ''कलाम को यह प्रेरणा भगवान राम से मिली थी।'' ब्राह्मणवादी विदेशी आर्य ब्राह्मणों ने स्कूली पाठ्यक्रमों में भी ज्योतिष, कर्मकांड तथा पुरोहिताई को फिर से शामिल किया। उस दौरान बी. जे. पी. सरकार के मंत्री मुरली मनोहर जोशी द्वारा ब्राह्मणवाद की खूब हवा दी गई। इतना ही नहीं, इतिहास भी बदलने का प्रयास किया गया, यह कहकर कि भारत का इतिहास विदेशियों ने लिखा है, जो गलत है। ब्राह्मणवादियों ने यह भी कहना शुरू कर दिया है कि आर्य बाहर से भारत नहीं, बल्कि भारत से ही बाहर जाकर फैल गये थे। यदि यह तथ्य मान भी लिया जाये, तो घोड़ा, रथ, दाहकर्म, यज्ञ, पशुबलि, तीन वर्ण, पितृ प्रधान समाज, अग्निवेदी पूजा आदि जिनका प्रचलन ईसा पूर्व 1500 से पहले भारत में नहीं था, अचानक इन सबों का वर्णन वेदों में कैसे आया? वास्तव में ये सब आर्य आक्रमण के पश्चात् ही भारत में प्रचलित हुए। ऋग्वेद में वर्णित उपर्युक्त प्रचलन ईरानी समाज में प्रचलित था, जिसका वर्णन जेन्द अवेस्ता में आया है। जेन्द अवेस्ता और वेद में वर्णित तथ्यों में काफी समानता है। इन प्रमाणों के उत्तर में आर्य ब्राह्मण क्या कहेंगे? जो भी कहेंगे झूठ और दलील ही होगा।

'आर्य ब्राह्मण विदेशी हैं' यह इतना अकाट्य तथ्य है कि राजाराम मोहन राय और बालगंगाधर तिलक जैसे हिन्दूवादी ब्राह्मण विद्वान भी यह नहीं कह पाये कि आर्य भारत के मूलनिवासी थे। रमेश चन्द्र मजुमदार, के.ए. नीलककंठ शास्त्री, देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर, पो. रामशरण शर्मा, हेमचन्द्र राय चौधरी, डी. डी. कोसाम्बी और महापंडित राहुल सांकृत्यायन जैसे इतिहास और संस्कृति के विद्वानों ने आर्य ब्राह्मणों के विदेशी होने का अकाट्य तर्क दिये हैं। फिर भी ''हिन्दू सम्प्रदायवादी प्रचार करते हैं कि आर्य भारत के मूल निवासी थे और यहाँ से वे विश्व के दूसरे भाग में फैले। ये ऐसा प्रचार किसी ठोस शोध या अध्ययन के आधार पर नहीं करते हैं बल्कि राजनीतिक और आक्रामक भावनाओं से अभिभूत होकर ऐतिहासिक तथ्यों की तोड़–मरोड़ करते हैं, प्रचारक सोचते हैं कि यदि आर्यों का मूल वासस्थान भारत से बाहर माना जायेगा तो वे स्वयं विदेशी समझे जायेंगे और आर्य उसी कोटि में रखे जायेंगे जिस कोटि में वे स्वयं मुसलमानों और ईसाइयों को रखते हैं।

विटजेल लिखते हैं कि भारत पर विदेशी आक्रमणकारीयों की एक लंबी सूची है, फारसी लोग (530 ई. पू.), सिकंदरनीत यूनानी (327 ई. पू.), बैक्ट्रियाई यूनानी (150 ई. पू. के आसपास), उत्तर ईरानी शक (150 ई. पू.) इसी क्रम में गुर्जरों, अरबों सिंध में, मध्य एशिया के गज़नी, तुर्कों और गुलाम वंश के आक्रमणकारी, मुगल और अफगान, यूरोपवासी पुर्तगाली और अंत में ब्रितानी साम्राज्यवादी लोग। फिर भी भारतीय इतिहास के वर्तमान पुनर्रचयिताओं ने क्यों इन आर्यों को ही ये लेखन विदेशी मानना स्वीकार नहीं करते? उत्तर साफ और सीधा है। उत्तर है : ये लेखक आर्य भाषा और प्राचीन भारतीय साहित्य तथा उससे संबद्ध धार्मिक परंपराओं को और सर्वोपरि तो वेदों को इस उपमहाद्वीप के बाहर के भूभाग में उपजा, या कहें रचा हुआ मानने को कदापि तैयार ही नहीं हैं। इसके साथ विदेशी विशेषण जोड़ते ही जैसे इन्होंने बिजली का नंगा तार छू लिया हो, वैसे उछल पड़ते हैं। वेदों को विदेशी भूमि की रचना स्वीकार करने की बात कहते ही जैसे भूचाल आ गया हो, इनके हिंदुत्व की विचारधारा वाली आधारभूमि हिलने लगती है, इनके टिके पाँव लड़खड़ाने लगते हैं। इतिहास के पुनर्रचनाप्रिय इन लेखकों के स्वप्नमहल की नींव खोखली जो है। डर है तो बस इतना भर कि वह कब भराभरा कर भूमिसात हो जाये। आगे विट्जेल महोदय लिखते हैं– ''स्वदेशी मूल वाली स्थापना के समर्थकों ने अपनी मतवाद की पुष्टि में जितने भी साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं, यदि उन सबको एकत्र किया जाय और उनकी गहराई से छानबीन करने की डगर पर चल पड़ें तो हमारे पाँव लहूलुहान हो जायेंगे। ऐसा न करने में ही हमारी भलाई है।

विदेशी आर्य ब्राह्मणों की चालबाजी और विरोधाभासी तर्क अब नहीं चलने वाली है। आनुवंशिक शोध से ब्राह्मणवादी शक्तियों के मुख से मुखौटा हट गया है। इस तथ्य को सभी मूलनिवासियों में प्रचारित करना है तथा यह बताना है कि भारत में विदेशी आर्य ब्राह्मणों ने क्या–क्या गलतियाँ की हैं। उन्होंने अपनी कूटनीति चाल से एक क्रूर प्रवृत्ति से भारतीय साम्राज्य को, जो शांति, सद्भाव, समृद्धि एवं एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था पर आधारित था, उसे कट्टरवाद, कर्मकाण्ड, घृणा, असमानता तथा हिंसा के साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया, जिसे अब उछालने की आवश्यकता है। आर्यों ने जिस ढिढाई से इस देश के मूलनिवासियों पर गुलामी को थोपा है, उन तथ्यों का पर्दाफास करना है (डॉ. पी. डी. सत्यपाल)।''

साभार :
आनुवांशिक शोध (D.N.A) एवं विदेशी आर्य–ब्राह्मण
पेज संख्या 66 से 70 तक
डॉ. विजय कुमार त्रिशरण

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

मेटरनिख–युग (1815–1848)

तात्पर्य

इतिहास हमेशा किसी न किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति की कृतियों से प्रभावित होता है। यूरोप के रंगमंच पर जब तक नेपोलियन विद्यमान रहा, वह इतिहास का केन्द्र–बिन्दु बना रहा। सन् 1815 ई० में जब उसका पतन हो गया तब उसके रिक्त स्थान की पूर्ति मेटरनिख ने की। सन् 1815 ई० से सन् 1848 ई० तक वह यूरोपीय इतिहास का कर्णधार बना रहा। यह काल मेटरनिख की विशेष कृतियों से प्रभावित होता रहा। इसलिये इतिहास के उस काल को 'मेटरनिख–युग' की संज्ञा प्रदान की गयी। उसका व्यक्तित्व नेपोलियन की तरह महान न था, फिर भी वह अपनी विशिष्टता के कारण इतिहास के इस काल–खण्ड का महत्वपूर्ण व्यक्ति बना रहा। वह इस युग का सर्वाधिक चर्चित व्यक्ति था। वह क्रांतिकारी विचारों का घोर विरोधी था। इसलिए मेटरनिख का काल प्रतिक्रियावादी–काल के नाम से भी जाना जाता है।

प्रारंभिक जीवन

मेटरनिख का जन्म 15 मई सन् 1773 ई० में आस्ट्रिया के एक संभ्रान्त परिवार में कोबलेनत्स नामक स्थान में हुआ था। उसका पूरा नाम क्लीमेंस–वान–प्रिंस मेटरनिख था। उसके पिता जर्मनी के जागीरदार थे। वह प्रारंभ से ही आधुनिक विचारों का विरोधी था। अपने विद्यार्थी–जीवन में ही उसने फ्रांस की क्रान्ति और जेकोबिन–दल के अत्याचार–पूर्ण कार्यों की कहानियाँ सुनी थी और उसी समय से उसके मन में नवीन विचारों के प्रति विरक्ति की भावना उत्पन्न हो गयी थी। उसके क्रान्ति–विरोधी होने का एक कारण यह भी था कि वह नेपोलियन की आक्रामक–नीति का शिकार हुआ था। इस आक्रमण के कारण उसके पिता को अपनी जागीर से वंचित होना पड़ा था। इससे रूष्ट होकर वह घोर–प्रतिक्रियावादी बन गया।

उसका विवाह आस्ट्रिया के राजघराने में हुआ था। इससे उसके सम्मान में बड़ी वृद्धि हुई थी। इसी समय से उसे सरकार के विभिन्न पदों पर नियुक्त किया गया। वह अनेक देशों में राजदूत के पद पर नियुक्त हुआ, जिससे वह अनेक राजाओं और कूटनीतिज्ञ लोगों के सम्पर्क में आया और उसे यूरोपीय राजनीति का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके कारण उसका भावी विकास सुनिश्चित हो गया। वह एक कुशाग्र बुद्धि वाला व्यक्ति था। अपनी इसी योग्यता के कारण वह सन् 1809 ई० में ऑस्ट्रिया का चाँसलर नियुक्त हुआ और सन् 1848 ई० तक वह इस पद पर बना रहा।

मेटरनिख की विचारधारा और उसका व्यक्तित्व

मेटरनिख अपने युग का सबसे निपुण और प्रतिभाशाली राजनीतिज्ञ था। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण वह नेपोलियन की मृत्यु के पश्चात् यूरोप की राजनीति का प्रमुख स्तम्भ बन गया। वह शस्त्र की अपेक्षा कूटनीति पर अधिक बल देता था। उसने अपने विचारों के अनुरूप यूरोप की राजनीतिक व्यवस्था को नया मोड़ दिया। क्रान्ति और नवीन विचारों का घोर विरोधी होने के कारण वह इनको प्रारम्भ में ही कुचल देना आवश्यक मानता था। क्रान्ति के सम्बन्ध में उसने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं– ''क्रान्ति एक रोग है। अतः उसका उपचार अनिवार्य रूप से करना चाहिये। वह एक गन्दा फोड़ा है, जिसे गर्म सलाखों से जला देना चाहिए। वह एक ज्वालामुखी है, जिसे बुझा देना चाहिये। वह एक दैत्य है, जो यूरोप की पुरानी व्यवस्था को निगलने के लिए मुँह खोले है।'' उसके ये विचार तत्कालीन आस्ट्रियन–साम्राज्य की व्यवस्था के अनुरूप थे। आस्ट्रिया एक राष्ट्र जैसा नहीं था। वह विभिन्न जातियों और संस्कृतियों का समूह था। वहां आस्ट्रियन, हंगेरियन, बोहेमियन, इटालियन, आदि अनेक जातियां निवास करती थीं। इन जातियों की अपनी अलग–अलग समस्याएँ थीं। वहां का समाज श्रेणी–भेद पर आधारित था और चर्च की शक्ति असीम थी। उस समय तक वहाँ नवीन विचारों का प्रवेश नहीं हो पाया था। अतः आस्ट्रियन प्रशासन का स्वरूप निरंकुश था। मेटरनिख भी स्वभाव से अनुदार,रूढ़िवादीऔर पुरातन व्यवस्था का समर्थक था। वह क्रान्ति, राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्र को खतरनाक बीमारी मानता था। इसीलिए वह जीवन–पर्यन्त उन्हें नष्ट करने के लिए संघर्ष करता रहा।

वह अपनी योग्यता से पुराने विचारों को स्थापित करने का प्रयास करता रहा। यूरोप के अधिकांश शासक उसके व्यक्तित्व से प्रभावित थे। वियना–सम्मेलन में उसने अपने गुणों की छाप अंकित की थी। सारा यूरोपीय–विधान उससे प्रभावित होता था। यह यूरोप में संयुक्त व्यवस्था का सूत्रधार था। ऑस्ट्रिया, इटली और जर्मनी पर उसका प्रत्यक्ष प्रभाव था। 1848 ई० तक वह यूरोपीय राजनीति का अभिनेता था। लगभग 40 वर्षों तक यूरोप उसकी छत्रछाया में रहा। इतिहासकार हेजन के अनुसार, ''वह उच्च पद पर आसीन धनी, सुसंस्कृत और सामाजिक गुणों से सम्पन्न तो था ही, साथ ही साथ उसे विज्ञान की भी कुछ जानकारी थी। इसीलिये वह अपने को सर्वज्ञ समझता था। वह उसकी व्यक्तिगत कमजोरी थी। अपने को वह राजनयिकों के कुचक्रों में उलझाए रखता था। वह अपने को एक सुलझे हुये कुटनीतिज्ञ के रूप में प्रदर्शित करता था। उसका अहंकार हिमालय के समान ऊँचा था। वह कहा करता था ''मैं यूरोपीय समाज के पतनशील ढाँचे को सहारा देने के लिये उत्पन्न हुआ हूँ।' अतः वह ऐसे लोगों का नेता बन गया जो समानता, स्वतंत्रता की बात को क्रांन्तिकारी मस्तिष्क की घृणित बकवास मानते थे। इस प्रकार स्वाधीनता की आकांक्षाओं का वह कट्टर और प्रबल शत्रु था। संक्षेप में, उसकी गृह–नीति और वैदेशिक नीति का उद्देश्य था– उदारवाद का दमन और रूढ़िवाद का समर्थन।

मेटरनिख की गृह–नीति

प्रधानमंत्री के पद पर आसीन होने के बाद अपने विचारों के अनुरूप ऑस्ट्रिया की गृह–नीति का संचालन किया। उसने एक नवीन व्यवस्था का आदर्श प्रस्तुत किया, जिसका प्रमुख प्रभाव यूरोप में सन् 1848 ई० तक बना रहा। वह अपने को इस बात के लिये जिम्मेदार मानता था कि उसने नेपोलियन के कार्यों के प्रतिकूल यूरोप में क्रान्ति के पूर्व की स्थिति की पुनर्स्थापना करके पुराने युग का निर्माण किया। उसकी यह भी मान्यता थी कि उसका यह कार्य संस्कारगत होने के साथ–साथ देशीय परिस्थितियों के अनुरूप था। अनेक जातियों एवं संस्कृतियों का निवास होने के कारण ऑस्ट्रिया में भाषा, रक्त और रहन–सहन की दृष्टि से कोई समानता न थी। इन सबको ऑस्ट्रियन–साम्राज्य के अर्न्तगत बनाये रखने के लिए कठोर नीति की आवश्यकता थी। मेटरनिख यह अच्छी तरह से जानता था कि इन राज्यों का ऑस्ट्रियन साम्राज्य के अन्तर्गत रहना तभी तक सम्भव है जब तक यहाँ राष्ट्रीयता का विकास नहीं होता। अपने अनुभव के आधार पर उसने यह भी देख लिया था कि क्रान्ति के कारण अन्य यूरोपीय राज्यों में राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार होने लगा है तथा ये ऑस्ट्रियन–साम्राज्य भी उससे कुछ–कुछ प्रभावित होने लगे हैं।

उपर्युक्त परिस्थिति में मेटरनिख की नीति यह थी कि कठोर नीति तथा निर्मम नियंत्रण के आधार पर ऑस्ट्रियन–साम्राज्य में यथास्थिति, बनाये रखी जाए और वहाँ क्रान्तिकारी भावनाओं एवं नवीन–विचारों का प्रवेश प्रतिबंधित कर दिया जाय। इस प्रकार उसकी व्यवस्था आधुनिक भावना के विरूद्ध हस्तक्षेपकारी पुलिस, विस्तृत गुप्तचर प्रबन्ध और नवीन–विचारों के दमन एवं नियंत्रण पर आधारित थी। राज्य में समाचार–पत्रों पर कड़ा प्रतिबन्ध था और स्कूल तथा कालेजों में उदार विचार वाली पुस्तकों का प्रवेश निषिद्ध था। प्रोफेसरों पर शासकीय नियंत्रण था। इसके कारण देश की बौद्धिक–चेतना कुंठित हो रही थी। उसकी दृष्टि में ऑस्ट्रिया में इस व्यवस्था को सुरक्षित रखने का सर्वोत्तम उपाय यह था कि इस नीति को अन्य देशों में भी फैला दिया जाये और इसमें उसे सफलता भी मिली। अपनी इस योजना को सर्वप्रथम जर्मनी और इटली में कार्यान्वित किया। उसने अनुदार–नीति के आधार पर बड़ी शक्तियों को एक सूत्र में संगठित करने का भी प्रयत्न किया। इस प्रकार वह चाहता था कि शासकीय–नियंत्रण के द्वारा सर्वत्र अनुदार–व्यवस्था को स्थापित कर दिया जाय। अपनी इसी नीति से प्रेरित होकर उसने स्वायत्त–शासन सम्बन्धी मांगों की पूरी निर्दयता के साथ कुचल दिया।

इतिहासकार मोवट के अनुसार, ''फ्रान्स की क्रान्ति ने एक ऐसी दीप–शिखा प्रज्जवलित कर दी थी, जो न तो पुरानी दुनिया में बुझी औ न नई में।' ऐसी हालत में मेटरनिख को न तो दिन का चैन था न रात का आराम। उसका ध्यान निरन्तर इस ओर लगा रहता था कि कहीं ऐसा न हो कि यूरोप की राजप्रणाली छिन्न–भिन्न हो जाये। इसलिये उसने नवीन विचारों के खिलाफ सजग रहकर सदैव कठोर कदम उठाया। अतः उसको घोर–प्रतिक्रियावादी और सुधार विरोधी कहा जा सकता है।

विदेश नीति

नेपोलियन की पराजय और वियना–कांग्रेस के बाद यूरोप में ऑस्ट्रिया का एक शक्तिशाली, विशाल तथा महत्वपूर्ण राज्य के रूप में विकास हुआ। ऑस्ट्रिया को यह महत्व मेटरनिख के कारण प्राप्त हुआ, जो वियना–कांग्रेस का अध्यक्ष था और जिसने यूरोप के पुनर्निमाण में ऑस्ट्रिया के हितों का पूर्ण ध्यान रखा। इससे यूरोप की बागडोर फ्रांस से हटकर ऑस्ट्रिया के हाथों में आ गयी। लोम्बार्डी और वेनेशिया के राज्यों पर उसका प्रभाव स्थापित था। परमा, मेडिना, और टस्कनी के राज्यों में हैप्सबुर्ग–वंश के शासकों का अधिकार स्थापित था। इसी प्रकार जर्मनी में भी उसे महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया था। ऑस्ट्रिया द्वारा अधिकृत सारे क्षेत्रों में मेटरनिख का अनुदारवाद अपना पंजा जमाये रहा। इस प्रकार सन् 1815 ई० के बाद ऑस्ट्रिया यूरोपीय राजनीति का केन्द्र–बिन्दु बन गया।

वह फ्रान्स, नेपोलियन और उसके नवीन विचारों का विरोधी था, पर युद्ध के मैदान में उसका सामना करना मेटरनिख के लिये असम्भव था। इसलिये अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उसने कूटनीति का सहारा लिया। साथ ही, वह यूरोप में रूस की प्रधानता का भी विरोधी था। ऐसी स्थिति में उसने अपने दोनों दुश्मनों को आपस में भिड़ा देने की चालें चलीं। उसकी इस कूटनीति का परिणाम यह हुआ कि यूरोपीय राजनीति में आस्ट्रिया के हस्तक्षेप के कारण नेपोलियन का पतन सम्भव हुआ। इसके कारण यूरोपीय–राजनीति में उसका महत्व बढ़ गया और इसी महत्ता के कारण उसे वियेना–कांग्रेस के सभापतित्व का कार्य सौंपा गया, और जिसका लाभ उठाकर अपनी इच्छानुसार कांग्रेस के निर्णयों को प्रभावित किया।

जर्मनी के सम्बन्ध में ऑस्ट्रिया की नीति स्वार्थपूर्ण थी। नवीन जर्मन परिसंघ का गठन इस प्रकार किया कि उसका नियंत्रण ऑस्ट्रिया द्वारा होता रहे। जर्मनी के सभी राज्यों के लिये एक केन्द्रीय–संसद का गठन किया गया, जिसकी राजधानी फ्रॉकफोर्ट रखी गयी। इस संघ का अध्यक्ष ऑस्ट्रिया था। संसद के निर्णय के क्रियान्वयन का दायित्व शासकों पर था, जिनकी दिलचस्पी इस सम्बन्ध में बहुत कम हुआ करती थी। राज्य की जनता से इस संघ का कोई सम्बन्ध न था। पर यह व्यवस्था अधिक समय तक चलने वाली न थी, क्योंकि वहाँ की जनता के बीच

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

नवीन विचारधारा का प्रसार तीव्रता से हो रहा था, जिसके कारण वे शासन में भागीदार बनने के लिये उत्सुक प्रतीत हो रहे थे। फलस्वरूप वहाँ जन–असंतोष व्यापक रूप से फैलने लगा। इसके कारण वहाँ अनेक प्रदर्शन हुए। मेटरनिख ने आन्दोलनों को कुचलने का भरसक प्रयास किया। इससे जर्मन जनता ऑस्ट्रिया से सख्त नाराज हो गयी, जिसका लाभ प्रशिया को प्राप्त हुआ। यही कारण था कि मेटरनिख की मृत्यु के पश्चात प्रशिया अपने नेतृत्व में जर्मन–राज्यों का एकीकरण करने में सफल होकर केन्द्रीय यूरोप के नेतृत्व को ग्रहण करने में भी कामयाब हुआ।

इसी तरह मेटरनिख ने महान खतरे को मोल लेकर इटली के विध्वंसक राष्ट्रवादी आन्दोलनों को दबा दिया। उसने बाल्कन–प्रदेशों की स्वतंत्रता सम्बन्धी महत्वकांक्षाओं को कुचल दिया और जार की शैतानी चालों पर अंकुश लगा दिया, जो बाल्कन–प्रदेश में अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। इंग्लैंड के तीव्र विरोध के बावजूद उसने नेपल्स और स्पेन की क्रान्तियों को अन्य देशों की सहायता से कुचल दिया। सन् 1830 ई० में जर्मनी और इटली के आन्दोलनों का भी उसने दमन कर दिया। इसके साथ ही उसने पांच शक्तियों के सन्तुलन को स्थापित करने का प्रयास किया, जिसका उद्देश्य फ्रान्स, रूस और ग्रेटब्रिटेन जैसी विविध यूरोपीय शक्तियों के बीच सन्तुलन बनाये रखना था।

मेटरनिख का पतन

मेटरनिख अपने युग का शिकार अथवा कैदी था। इस संबंध में एलिसन फिलिप्स ने लिखा है, ''वह दबी और थकी हुई पीढ़ी के लिये आवश्यक व्यक्ति था। यह उसका दुर्भाग्य था कि जब उसकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी थी, इसके बाद भी वह जीवित रहा। वह यह नहीं समझ सका कि जब वह स्वयं बूढ़ा और कमजोर होता जा रहा था तब संसार अपनी तरूणाई प्राप्त कर रहा था''।

सन् 1830 ई० में फ्रांस में दूसरी क्रान्ति हुई, जिसने मेटरनिख की नीति को जबरदस्त चुनौती दी। वियना–कांग्रेस की व्यवस्था राष्ट्रीयता के सिद्धांत के विपरीत थी। अतः सर्वप्रथम बेल्जियम ने अपने को हालैण्ड से अलग कर उसकी व्यवस्था को चुनौती दी। ऑस्ट्रिया फ्रांस की दूसरी क्रांति से प्रभावित नहीं हुआ। पर फ्रांस की तीसरी क्रान्ति (1848) ने उसे झकझोर कर रख दिया। इस क्रान्ति से लगभग सारा यूरोप प्रभावित हुआ। अतः ऑस्ट्रिया उससे अछूता न रह सका। इस क्रान्ति की भावना से प्रेरित हो लोगों ने कुद्ध होकर मेटरनिख के निवास को घेर लिया। मेटरनिख ने यह भली–भांति जान लिया कि अब उसके दिन लग गये हैं। अतः वह भागकर इंग्लैण्ड चला गया। इस प्रकार उस महान् राजनीतिज्ञ का पतन हो गया, जो समय की थपेड़ों का शिकार हुआ। सन् 1859 ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

मेटरनिख का मूल्यांकन

मेटरनिख ने सन् 1809 ई० से लगभग 40 वर्षों तक ऑस्ट्रिया का मार्गदर्शन किया। अगले दो दशकों में वह यूरोप का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति बना रहा। उसमें वैयक्तिक और सामाजिक–दोनों गुण थे। उसमें राजनयिक क्षमताएँ थीं और कूटनीति का उसे भारी अनुभव था। उसमें मनुष्यों को समझने की योग्यता थी। उसमें स्वाभाविक मृदुलता के साथ षड्यंत्रकारी प्रवृत्ति का भी समावेश था। वह जटिलतम समस्याओं को स्वाभाविक आसानी से निपटा लेता था। इन गुणों के कारण वियना की सभा में मेटरनिख ने निर्णायक भूमिका अदा की और बाद में भी वही मध्य–यूरोप का एक प्रकार से नैतिक तानाशाह बना रहा। इतिहासकार केटलबी के अनुसार– 'वियना के जटिल और भँवरों से भरे तालाब में वह मछली के समान बिना भय के विचलित हुए बिना सरलता से तैरता रहा।

मेटरनिख ने अपनी नीति ऑस्ट्रिया के हितों को ध्यान में रखकर ही निर्धारित की थी। ऑस्ट्रिया का बेमेल–साम्राज्य किन्हीं निश्चित सिद्धांतो पर टिका हुआ न था। उसका एकमात्र आधार यह था कि सारे साम्राज्य का एक स्वेच्छाचारी सम्राट हो। मेटरनिख इस बात को भली–भाँति समझता था कि यदि साम्राज्य के किसी भी भाग में राष्ट्रवादी–आन्दोलन हुआ तो साम्राज्य उतनी ही सरलता से नष्ट हो सकता है। यह मानना होगा कि वह फ्रांस या रूस द्वारा आक्रमण होने पर नष्ट हो सकता है। यह मानना होगा कि वह ऑस्ट्रिया के साम्राज्यकी रक्षा के लिये चिंतित था। जिस समय ऑस्ट्रिया की भाग्यरूपी नौका मंझधार में थी और जब वह फ्रांस के विरूद्ध जीवन–मरण के युद्ध में ग्रस्त था, उस समय उसने ही आस्ट्रिया की नीति को ऐसा प्रेरक–बल दिया जिसके

सेवा में,

नाम ....

पता ....

....

....

आधार पर नेपोलियन को पराजित किया जा सका। इतना होते हुए भी उसके आलोचकों की संख्या कम न थी।

उसके आलोचकों ने उसकी निन्दा करते हुए उसे सनकी कहा है और कार्य को व्यर्थ माना है। बाद की पीढ़ी ने उसके सारे कार्यों को नष्ट होते हुए देखा, क्योंकि वह युग की राजनीतिक गति के अनुकुल न था। उसकी नीतियाँ नकारात्मक, अधूरी और असामाजिक सिद्ध हुई। उसने कोशिश की कि वह ऑस्ट्रिया की दृढ़ता को यूरोपीय समाज के ऊपर आधारित रखे और यूरोप में यथास्थिति कायम रहे। कुछ लोगों ने उसकी आलोचना करते हुए उसे षड्यंत्रकारी, कपटी और अवसरवादी कहा है। उनका कहना है कि मेटरनिख ने समय की आवश्यकता को नहीं समझा और जनता की इच्छाओं का बड़ा विरोध किया। यथास्थिति कायम रखने की उसकी नीति देश के विकास में बाधक सिद्ध हुई। उसका औद्योगिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विकास अवरूद्ध हो गया।

लेकिन जिस यूरोप ने उसकी निंदा की थी, उसने 40 वर्षों तक उसके द्वारा अर्जित शान्ति का उपयोग किया। सन् 1848 ई० में मेटरनिख के पतन से यूरोप के इतिहास का एक युग समाप्त हो गया। सारे प्रयासों के बावजूद वह न तो बीते हुए युगको पुनर्स्थापित कर सका और न ही क्रान्ति तथा उदारवाद की बाढ़ को रोक सका।

साभार :
यूरोप का इतिहास (1453–1870)
पेज संख्या 234 से 240 तक
डॉ० भगवान सिंह वर्मा

राजनीति का अलग मुहावरा गढ़ गए कांशीराम

या तो इसे सुन नहीं पा रहा था या सुनकर भी अनसुना कर रहा था। और तो और 1973 में स्थापित जिस कर्मचारी संगठन ऑल इंडिया बैकवर्ड ऐंड माइनॉरिटीज एम्प्लॉयीज फेडरेशन (बामसेफ) के जरिए इस समूचे सिलसिले की शुरूआत हुई थी, खुद उसके ज्यादातर लोगों को भी अपने शीर्ष नेता की यह भाषा और कार्यप्रणाली समझ में नहीं आई। नतीजा यह रहा 1986 में कांशीराम का रास्ता बामसेफ से अलग हो गया और वह कर्मचारी संगठन की जटिलताओं से मुक्त होकर पूरी तरह राजनीति के ही हो गए। भारतीय समाज अंतहीन जातीय घृणा और अलगाव पर टिका हुआ है, यह विश्लेषण डॉ. अंबेडकर का था लेकिन लगातार इस घृणा और अलगाव का शिकार ही बने रहने के बजाय इसका इस्तेमाल एक हथियार के रूप में करने की कारगर रणनीति कम से कम उत्तर भारत में विकसित करने का श्रेय जिस एक अकेले राजनेता को जाता है, वह कांशीराम थे। यह काम न तो कोई मंच पर दहाड़ने वाला वक्त कर सकता था, न ही सत्ता की चकाचौंध को अपना निजी करिश्मा मानने की गलतफहमी में डूबा कोई राजनेता। इसके लिए एक संगठक, एक रणनीतिकार और किसी निशानेबाज जैसी सीधी मार वाली भाषा के माहिर व्यक्ति की जरूरत थी। ये तीनों खूबियां कांशीराम के भीतर मौजूद थीं। शायद यह कहना थोड़ा सरलीकरण हो लेकिन कांशीराम के अंदर ये खूबियां विकसित हो पाने की सबसे बड़ी वजह यही थी कि अपनी पृष्ठभूमि में वह अपमान, उत्पीड़न और दमन लेकर नहीं आए थे जिससे भारत में ज्यादातर अछूत, दलित नेताओं को अपने बचपन और युवावस्था में गुजरना पड़ा था। उनका जन्म पंजाब के गुरदासपुर जिले में करीब पांच एकड़ जमीन के मालिक रैदासी सिख परिवार में सन् 1934 में हुआ था। बी. एससी. पास करने के बाद पहले भारतीय सर्वेक्षण विभाग में और फिर प्रतिरक्षा उत्पादन विभाग में उनकी नौकरी लगी थी। दलितों की राष्ट्रव्यापी स्थिति और उनकी मुक्ति की विचारधारा से उनकी वाकफियत भी पुणे में अपनी नौकरी के दौरान हुई। ऐसे में दलित राजनीतिक का जो अपना आक्रामक मुहावरा धीरे–धीरे उन्होंने विकसित किया, वह अछूतों की मुक्ति वाले डॉ. अंबेडकर के बौद्धिक विमर्शात्मक मुहावरे से बहुत अलग था। हालांकि यह काम सहज ही होता चला गया था, इसे इरादतन उन्होंने न कभी किया, न ही कभी ऐसा करने का कोई दावा किया।

कांशीराम के राजनीतिक कौशल की सबसे बड़ी बानगी 1993 में देखने को मिली जब मुलायम सिंह के नेतृत्व वाली समाजवादी पार्टी के साथ मिलकर उन्होंने उत्तर प्रदेश में सपा और बसपा की सरकार बनाई। इस घटना में निहित संभावनाएं एक अर्से तक – डेढ़ साल में यह सरकार गिर जाने के बाद भी – भारतीय राजनीति को थरथराती रही। इसके बाद के दस वर्षों में बसपा ने विचारधारा के मामले में बिल्कुल दूसरे छोर पर खड़ी भाजपा के साथ मिलकर उत्तर प्रदेश में करीब छह–छह महीने की तीन सरकारें बनाई और बसपा का शीर्ष स्थान बिना किसी खास चीं–चपड़ के कांशीराम से हटकर मायावती के पास चला गया। कहना मुश्किल है कि इस दौरान बसपा की सोच और विचारधारा का क्या हुआ। अलबत्ता कांशीराम की खड़ी की हुई पार्टी की लोहा इस मामले में मानना होगा कि विधायक दल में तीन जानलेवा टूटों के बावजूद यूपी में इसकी राजनीतिक हैसियत आज भी ज्यों की त्यों है। और जहां तक सवाल डॉ. अंबेडकर की परंपरा में मा. कांशीराम की निरंतरता का है तो इसकी अगली कड़ी के रूप में खुद को स्थापित करने के लिए उनके राजनीतिक वारिसों को मंत्री–मुख्यमंत्री बनने के अलावा भी बहु कुछ करना सीखना होगा।

साभार :
बहुजन नायक मान्यवर कांशीराम स्मृति ग्रंथ
पेज संख्या 104
एस. एस. गौतम

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।